CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'शिव' ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–२०

पाराशरस्मृतिः

[विस्तृतभूमिका-अनुक्रमणिका-हिन्दीटीका-
पाठान्तरादिभिः समलंकृता]

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि
आचार्य पं० शिवदत्तमिश्र शास्त्री
सम्पादकीय विभाग
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी।

प्रकाशक:
ठाकुरप्रसाद ऐण्ड सन्स बुकसेलर
राजादरवाजा, वाराणसी।

सन् १९८१ मूल्य ८) रुपया

[सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चौखम्भा ओरियन्टालिया
बंगलो रोड, ९ यू. बी.
जवाहर नगर, दिल्ली-११०००७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

'शिव'ग्रन्थमाला : ग्रन्थांक–२०

पाराशरस्मृतिः

[विस्तृतभूमिका-अनुक्रमणिका-हिन्दीटीका-
पाठान्तरादिभिः समलङ्कृता]

•

व्याख्याकारः सम्पादकश्च
व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि
आचार्य पं० शिवदत्तमिश्र शास्त्री
सम्पादकीय विभाग
भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

•

प्रकाशक :
ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर
राजादरवाजा, वाराणसी

[सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन]

फोन : ६४६५०] सन् १९८१ ई० [मूल्यम् ८.००

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

924
12-11-83

भूमिका

अष्टादश स्मृतियों में 'कलौ पाराशरा स्मृताः' के अनुसार कलियुग में पाराशर स्मृति की ही मान्यता सर्वसम्मत है। क्योंकि युगों के अनुसार जैसे-जैसे मनुष्यों की शक्ति का ह्रास होने लगा वैसे-वैसे त्रिकालज्ञ महर्षियों ने मनुष्यों के सामर्थ्यानुसार धर्म और उसके अंगभूत प्रायश्चित्तादि में परिवर्तन कर दिया। **'कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां…'** के अनुसार जहाँ सत्ययुग में मनुस्मृति का प्राधान्य रहा, वहीं त्रेता में गौतम, द्वापर में शंख लिखित स्मृतियों का तथा कलि में पाराशर स्मृति की ही मान्यता सर्वग्राह्य हुई। यतः ब्रह्महत्या और गोवधादि के प्रायश्चित्त में मनु ने जो व्यवस्था दी थी वह कलि के मनुष्यों के लिए सर्वथा कर्तुमशक्त हो गयी। इसीलिए पाराशर ने **'अथवा सेतुदर्शनम्'** कहकर उसे सुलभ कर दिया।

इत्थंभूत से लोकप्रिय एवं सर्वग्राह्य ग्रन्थरत्न का अब तक कोई शुद्ध संस्करण राष्ट्रभाषा हिन्दी टीका के साथ नहीं प्राप्त था, जो सर्वजन सुलभ हो। इस अभाव की पूर्ति के लिए **बाबू ठाकुरप्रसाद ऐण्ड सन्स, कचौड़ीगली, वाराणसी** के संचालकों ने मुझसे कई बार साग्रह निवेदन किया कि पाराशर स्मृति का कोई सर्वोत्तम शुद्ध संस्करण प्रकाशित होना चाहिए। वस्तुतः उनकी निरन्तर सत्प्रेरणा का ही प्रतिफल है कि मैं अनेक कार्य-व्यस्त रहने पर भी प्रस्तुत पुस्तक का सर्वांगपूर्ण संस्करण आपके हाथों प्रस्तुत कर सका हूँ।

इसमें बारह अध्याय हैं। १. प्रथम अध्याय में वेदव्यासजी से महर्षियों द्वारा प्रश्न एवं उनके उत्तर, धर्म के सूक्ष्म निरूपण, ब्राह्मणों के लिए षट्कर्म तथा उनसे सुख-प्राप्ति, आतिथ्य-सत्कार से शुभ फलप्राप्ति तथा महर्षि पाराशर द्वारा चारों वर्णों के लिए आचारादि कर्म का निरूपण है। २. द्वितीय अध्याय में ब्राह्मण, क्षत्रियादि वर्णों के साधारण धर्म कथन हैं। ३. तृतीय अध्याय में चारों वर्णों के लिए जननाशौच तथा मरणाशौच का निरूपण है। ४. चतुर्थ अध्याय में

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आत्महत्या से मृत स्त्री-पुरुषों के दाहादि करने में प्रायश्चित्त और तप्तकृच्छ्रादि का लक्षण है। ५. पंचम अध्याय में भेड़िया, कुत्ते और शृगाल आदि जानवरों के काटने में प्रायश्चित्त, चाण्डालादि से मारे हुए ब्राह्मणों के शरीर-स्पर्श का विचार है। ६. षष्ठ अध्याय में प्राणियों की हिंसादि तथा क्रौंचादि वध का प्रायश्चित्त है। ७. सप्तम अध्याय में द्रव्यादि शुद्धि-कथन, रजस्वला स्त्री से स्पर्श का प्रायश्चित्त है। ८. अष्टम अध्याय में गोहत्या-सम्बन्धी प्रायश्चित्त और प्राजापत्य व्रत का विधान है। ९. नवम अध्याय में ज्ञाताज्ञात अवस्था में गौ, बैल आदि के मरने पर प्रायश्चित्त तथा कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का विधान है। १०. दशम अध्याय में अगम्या स्त्री-गमन में चारों वर्णों के लिए प्रायश्चित्त कहा गया है। ११. एकादश अध्याय में अशुद्ध वीर्य आदि पदार्थ तथा शूद्रान्न भक्षण में प्रायश्चित्त का विवेचन है। १२. द्वादश अध्याय में दुःस्वप्न विचार, स्नान-विधि, अशक्त का वेदाध्ययन, शूद्रान्न निषेध, विष्ठा, मूत्रादि भक्षण एवं ब्रह्म-हत्यादि के प्रायश्चित्त का वर्णन है।

ग्रन्थ की समाप्ति में। **"एतत् पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम्। द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः।"** (परा०, श्लो० ७९, अ० १२) के अनुसार कहा गया है कि इसमें ५९२ श्लोक हैं। आचार तथा प्रायश्चित्त ये दो भागों में इसका विभाजन है। इसके अध्ययन से अत्यधिक पुण्य लाभ होता है, अतः प्रत्येक स्वर्गाभिलाषी व्यक्ति को चाहिए कि वह नित्य प्रति इसका पठन-पाठन करे।

वस्तुतः युगधर्म के अनुसार महर्षि पाराशर ने सामयिक धर्म की व्यवस्था दी है। यथा—

अस्मिन् मन्वन्तरे धर्माः कृत-त्रेतादिके युगे।
सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे॥

(पारा०, श्लो० १६, अ० १)

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः॥

(पारा०, श्लो० २२, अ० १)

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेष मुनिविभाषितम् ।
पराशरेण चाऽप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥

(पारा०, श्लो० ३४, अ० १)

कृते सम्भाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥

(पारा०, श्लो० २६, अ० १)

इसमें मूल पाठ की शुद्धता प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर की गयी है। स्थान-स्थान पर पाठान्तर भी दिया गया है। मूलानुगामी सरल, सुललित एवं परिमार्जित हिन्दी टीका लिखी गयी है। इसमें विषयानुक्रमणिका तथा श्लोकानुक्रमणिका भी दी गयी है जिससे इसकी उपयोगिता और भी अधिक बढ़ गयी है।

अब तक पाराशर स्मृति का ऐसा सर्वोत्तम संस्करण कहीं से प्रकाशित है यह देखने में नहीं आया।

इसकी सर्वोत्तम छपाई-सफाई एवं शुद्ध मुद्रण के लिए **ठाकुरप्रसाद ऐण्ड सन्स** के अधिकारी वर्ग धन्यवाद के पात्र हैं।

इसके सम्पादन में बन्धुवर **पं० हीरामणिजी मिश्र,** व्याकरणाचार्य से मुझे विशेष सहायता मिली है, इसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। इसका उद्घोषवचन जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी **श्रीमहेश्वरानन्दजी सरस्वती** महाराज ने लिखने का कष्ट किया है, एतदर्थ उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

यद्यपि इसके संशोधन-सम्पादन तथा हिन्दी व्याख्या का कार्य भी मैंने बड़ी सावधानी के साथ किया है, फिर भी मानव-दोष से सम्भव त्रुटियों के लिए **'शूर्पवद् दोषमुत्सृज्य गुणान् गृह्णन्ति साधवः'** के अनुसार क्षमा-प्रार्थी हूँ।

निर्जला एकादशी
सी० के० ५।२६ ए०, भिखारी दास,
वाराणसी–१

—**शिवदत्त मिश्र शास्त्री**

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपोद्घात वचन

धर्म का स्वरूप अत्यन्त निगूढ़ है। **'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्'** (महाभारत)। वह वैदिक समधिगम्य है। **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'** (मीमांसा)। वह मीमांसा शास्त्र अति गम्भीर और विपुल विशाल है। उसमें सहस्र अधिकरणों से धर्म की विवेचना की गयी है। **'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयस-सिद्धिः स धर्मः'** (वैशे० दर्शन)। धर्म प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से जानने की वस्तु नहीं है।

'प्रत्यक्षेणाऽनुमानेन यस्तूपायो न बुध्यते।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥'

नास्तिक, जो वेद-निन्दक हैं, **'नास्तिको वेदनिन्दकः'** (मनु०), अनेक कटाक्ष धर्म पर करते हैं। उनके नैयायिक वाचस्पति मिश्र, उदयनाचार्य आदि ने दुरूह युक्तियों से मुँहतोड़ उत्तर दिये हैं। धर्म के लिए प्रमुख प्रमाण सहस्र-शाखाओं से परिपूर्ण मन्त्र ब्राह्मणात्मक वेद, तदनुयायी ऋषियों से प्रणीत मनु, याज्ञवल्क्य, गौतम, शङ्ख, लिखित, पराशर, व्यास प्रभृति स्मृतियाँ, पुराण, उपपुराण, महाभारत शिष्टाचार हैं। उनका अवगम सायण, उव्वट, महीधर आदि के भाष्य, निघण्टु, निरुक्त, हेमाद्रि, कमलाकर भट्ट, कुल्लूक, मिताक्षरा आदि निबन्ध और व्याख्याओं से होता है। व्याकरण, ज्योतिष आदि षडङ्ग, छहों दर्शन, उनके ऊपर विरचित भगवत्पाद शंकराचार्य, रामानुजाचार्य प्रभृति सम्मान्य आचार्यों के भाष्य हैं, जो धर्म का यथार्थ अवबोध कराते हैं। वचनों में सामान्य, विशेष, उत्सर्ग और अपवाद भाव, आपाततः विरोध प्रतीत होते हैं, पर त्रिकालवेत्ता, सम्पूर्ण परिस्थितियों के अभिज्ञ, राग-द्वेष-रहित, परमतपस्वी महायोगिराज, परम्परया अध्ययन-अध्यापन, आचरण से सम्पन्न समस्त शास्त्रों के आलोडन-मंथन करनेवाले कुमारिल, शबर स्वामी, पार्थसारथिमिश्र आदि महापण्डितों ने मीमांसा-परिशोधित न्यायों के

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

द्वारा पञ्चावयवों की पद्धति से एकवाक्यता कर धर्म का निर्णय किया है। धर्म का स्वरूप सनातन है। इसमें कभी कोई परिवर्त्तन नहीं होता। सृष्टि के प्रारम्भ में अरबों वर्ष पहले सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर ने पूर्वपूर्वकल्पानुसार मन्त्रब्राह्मणात्मक वेदों का उपदेश अनुग्रह शरीर के द्वारा महर्षियों को दिया। वहाँ से यह परम्परा चली और यावत्संसार चलती रहेगी। इससे यथापूर्व जो टकरायेगा वह चूर्ण-विचूर्ण हो जायेगा। रावण, वेन रगड़े गये। हजारों वर्ष वह धर्म विधर्मियों से लड़ता रहा, उसका बाल बाँका नहीं हुआ। उसके साथ खेल करना अच्छा नहीं। उसका रक्षक परमेश्वर है, उसके पास अपार बल है, सोते सिंह को जगाना कल्याणकर नहीं।

अस्तु, पराशरस्मृति सामने है। यह कलि के लिए अन्तिम स्मृति है।

'कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः।
द्वापरे शंख-लिखिताः कलौ पाराशरा स्मृताः॥'

(पराशरस्मृति)

सत्ययुग में मनु, त्रेता में गौतम, द्वापर में शंख, लिखित और कलि में पराशर अधिक सम्मान-भाजन हैं। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं कि दूसरे महर्षि उपेक्षणीय हैं। पराशरस्मृति में सभी वेदोक्त धर्म सन्निविष्ट हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज, सभी वर्ण, उपवर्ण, ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, नर, नारी, राजा, प्रजा आदि के धर्म निरूपित हुए हैं। पातक, उपपातक, महापातकों का यथावत् विवेचन किया गया है। उनके प्रायश्चित्त निस्तार का उपाय कहा गया है। जननाशौच, मरणाशौच के नियम कहे गये हैं। किस समय कौन स्पृश्य या अस्पृश्य होता है इसका स्पष्ट विधान किया गया है। रजस्वला माता ही क्यों न हो चार दिन के लिए वह अस्पृश्य है। मेला, यात्रा, नौका, कृषि, विवाहादि के समय अस्पृश्यता नहीं ग्राह्य है। पूजा, भोजन के समय अनुपनीत सभी अस्पृश्य कहे गये हैं। स्वपाक की बड़ी महिमा है। स्व स्व वर्णों के साथ ही विवाह का विधान है। अन्यथा वर्णसंकर होकर भ्रष्ट सन्तान उत्पन्न होती है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य के यज्ञोपवीत संस्कार का पवित्र विधान है। बलिष्ठ, बुद्धिमान्, दीर्घायु सन्तानोत्पत्ति की विधि कही गयी है। चारित्र्य-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रक्षण की विधि और उसके लाभ कहे गये हैं। श्राद्ध के विधान और उसके विशिष्ट गुण सयुक्तिक वर्णित हुए हैं। जन्म से जाति का सिद्धान्त और सत्कर्म तप से उसके उपबृंहण का जोरदार निरूपण है। ईश्वर, वेद, धर्म की मान्यता कही गयी है। राजा, प्रजा के सम्बन्ध का भली भाँति निरूपण है। शासन के धर्म से विमुख होने पर उपप्लव उत्पन्न होने का गहराई से वर्णन है। सत्य, शौर्य, तप, त्याग, धैर्य का विशेष माहात्म्य कहा गया है। समरांगण में निर्भय देहोत्सर्ग करना, देश, धर्म की रक्षा में सर्वस्व की वलि कर देना सबसे महान् धर्म कहा गया है। यह अपूर्व धर्म-ग्रन्थ है। इसकी बहुत बड़ी मान्यता है। इसके ऊपर पराशरमाधव नाम का एक भाष्य कहना चाहिए। माधवाचार्य ने गम्भीर विवेचनात्मक व्याख्यान बुक्कमहीपति के समय में ही लिख दिया है। यह ग्रन्थ सर्वगम्य नहीं है और आज दुष्प्राप्य है।

श्री पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्री, व्याकरणाचार्य ने द्वादशाध्यायात्मक इस महनीय स्मृति का राष्ट्रभाषा हिन्दी में व्याख्यान प्रणयन किया है। यह व्याख्या स्पष्ट, सरल, सुललित और सटिप्पण प्रकाशित हुई है। इसमें अन्यान्य अनुसन्धान भी दिये गये हैं जिनसे इसकी गरिमा और उद्दीप्त हो उठी है। ग्रन्थकर्त्ता ने, जो अनेक ग्रन्थों के रचयिता तथा व्याख्यान-निर्माता हैं, इस व्याख्या के साथ विषय-श्लोकानुक्रमणिका आदि देकर सर्वगम्य कर दिया है। त्रुटि होना मनुष्य-स्वभाव-सिद्ध है।

'मर्त्यैरसर्वविदुरैर्विहिते क्व नाम स्याद्दोषलेशविरहः सुचिरन्तनेऽपि।'

गुणग्रहणैकपक्षपाती विद्वान् इसपर ध्यान नहीं देकर इसकी उपादेयता बढ़ायेंगे। मेरा शुभाशसन है कि यह ग्रन्थकर्त्ता और इनका व्याख्यान यशस्वी हो और इसकी उत्तरोत्तर अभिवृद्धि तथा प्रसार हो।

धर्मसंघ, दुर्गाकुण्ड,
वाराणसी
वैशा. शु. ८, सं. २०२६

—महेश्वरानन्द सरस्वती
[ऊर्ध्वाम्नाय काशीपीठाधीश्वर, अनन्त-
श्रीविभूषित, जगद्गुरु शङ्कराचार्य]

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विषयानुक्रमणिका

विषय पृष्ठांक

१. प्रथम अध्याय

धर्म के सूक्ष्म रूपों का निरूपण, ब्राह्मणोंके लिए षट्कर्म, युग-धर्म, आतिथ्यकर्म-द्वारा होनेवाली फल-प्राप्ति का कथन। १ १९

२. द्वितीय अध्याय

गार्हस्थ्य धर्म का विवेचन तथा कृषक द्वारा अनजान में हुए पापों के निराकरण का साधन। १९-२४

३. तृतीय अध्याय

जननाशौच तथा मरणाशौच का वर्णन,सगोत्रीकी शुद्धि का विधान, प्रसूताकी शुद्धिका कथन तथा वीर पुरुषों की गति का विवेचन। २४-३६

४. चतुर्थ अध्याय

आत्महत्या का प्रायश्चित्त, तप्त-कृच्छ्र नामक व्रत का विधान तथा स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य धर्म का पालन। ३६-४४

५. पञ्चम अध्याय

भेड़िये, कुत्ते आदि जानवरों के काटने पर शुद्धीकरण का विधान, अग्निहोत्री के मरण में दाह-कर्म की क्रिया। ४५-५०

६. षष्ठ अध्याय

जीवहिंसा में प्रायश्चित्त-कर्म का विधान, चाण्डाल-संसर्ग से उत्पन्न दोषोंका निराकरण, कृमि दोषका शुद्धीकरण तथा दूषित अन्न की शुद्धि का निरूपण। ५०-६८

७. सप्तम अध्याय

विविध प्रकार के द्रव्यों, पात्रों आदि की शुद्धि, रजस्वला-स्पर्श से प्राप्त होनेवाले अशौचकी निवृत्ति। ६८-७८

८. अष्टम अध्याय

गोहत्याके पाप का प्रायश्चित्त तथा प्राजापत्य व्रत का विधान। ७८-८९

९. नवम अध्याय

जाने या अनजाने में गाय-बैल आदि पशुओं का मरण होने पर उसके प्रायश्चित्त का निर्देशन तथा कृच्छ्र चान्द्रायण व्रत का निरूपण। ८९-१०२

१०. दशम अध्याय

चान्द्रायण तथा कृच्छ्र सान्तपन व्रत की विधि, अगम्या स्त्री से समागमएवं पशुमैथुनका प्रायश्चित्त तथा चारों वर्णों का शुद्धीकरण। १०३-१११

११. एकादश अध्याय

किसी अभोज्य पदार्थ के भक्षण की शुद्धि, विजातीय वर्णों से उत्पन्न होनेवाली सन्तान की संज्ञा,ब्राह्मण के लिए शूद्रान्न ग्रहण की विधि तथा प्रायश्चित्त का विधान, कृच्छ्र, अतिकृच्छ्र आदि व्रतों का उल्लेख। ११२-१२४

१२. द्वादश अध्याय

अज्ञातततावश मल-मूत्रादि के भक्षण-पान के दोष का निवारण, आत्म-हत्या के असफल प्रयास की शुद्धि, विविध प्रकार के स्नानादि का माहात्म्य तथा ब्रह्महत्यादि पापों का प्रायश्चित्त। १२४-१४०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्रीमात्रे जयन्त्यै नमः

पाराशरस्मृतिः

'शिवदत्ती' भाषाटीकासहिता

❀ ❀

१. प्रथमोऽध्यायः

अथाऽतो हिमशैलाग्रे देवदारुवनालये।
व्यासमेकाग्रमासीनमपृच्छन् ऋषयः पुरा ॥ १ ॥

साम्ब शिवं नमस्कृत्य धारावाहिक-संस्कृतेः।
पाराशरस्मृतेष्टीका भूयात् सज्ज्ञानहेतवे ॥

प्राचीन काल में हिमालय पहाड़ की चोटी पर, जहाँ देवदारु वन है, एकान्त में बैठे हुए वेदव्यासजी से महर्षियों ने पूछा ॥ १ ॥

मानुषाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे।
शौचाचारं यथावच्च वद सत्यवतीसुत ! ॥ २ ॥

हे सत्यवती सुत महर्षि व्यासजी ! इस वर्तमान कलिकाल में मनुष्यों का हितकारी धर्म, शौच तथा आचार क्या है ? उसे आप कहिए ॥ २ ॥

तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु स-शिष्योऽग्न्यर्कसन्निभः।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुति-स्मृति-विशारदः ॥ ३ ॥

श्रुति तथा स्मृतियों में विशारद, वेदव्यासजी, उस समय शिष्यों के सहित इस प्रकार शोभित हो रहे थे, मानो ज्वाला से अग्नि प्रदीप्त हो रहा हो, अथवा किरणों से सूर्य देदीप्यमान होता हो, ऐसे वेदव्यास-जी ने महर्षियों के वचन सुनकर कहा ॥ ३ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

न चाऽहं सर्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहम् ।
अस्मत्पितैव प्रष्टव्य इति व्यासःसुतोऽब्रवत् ॥ ४ ॥

हे महर्षियो ! मैं कलि के सम्पूर्ण धर्म-कर्मों का तत्त्व जाननेवाला नहीं हूँ। यद्यपि मुझे कलि के धर्म सामान्य पितृ-प्रसाद से ज्ञात है, अतः हम लोगों को पिता पराशर के पास ही चलकर यह प्रश्न करना उचित है, ऐसा पराशरसुत व्यासजी ने कहा ॥ ४ ॥

ततस्ते ऋषयः सर्वे धर्मतत्त्वार्थकांक्षिणः ।
ऋषिं व्यासं पुरस्कृत्य गता बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥

व्यासजी के इस प्रकार कहने पर कलि के सभी धर्मतत्त्वों की जिज्ञासा से महर्षि वेदव्यास को आगे कर, बदरिकाश्रम गये ॥ ५ ॥

नानापुष्प-लताकीर्णं फल-पुष्पैरलङ्कृतम् ।
नदी-प्रस्रवणोपेतं पुण्यतीर्थोपशोभितम् ॥ ६ ॥

बदरिकाश्रम, अनेक प्रकार की पुष्पवाली लताओं से, फल एवं पुष्पों से समन्वित है, अनेक नदियाँ तथा झरने जिसमें बह रहे हैं, तथा जिसका जल तीर्थों से अत्यन्त पवित्र है, ॥ ६ ॥

मृगपक्षि-निनादाढ्यं देवतायतनावृतम् ।
यक्ष-गन्धर्व-सिद्धैश्च नृत्य-गीतैरलंकृतम् ॥ ७ ॥

जिसमें अनेक प्रकार के जंगली जीव मृग और पक्षिगण निर्भीक होकर मनोहर शब्द कर रहे हैं, जो अनेक देव-मन्दिरों से अलंकृत है तथा यक्ष, गन्धर्व और सिद्धों के नाच-गान जहाँ परमात्मा की प्राप्ति के लिए हो रहे हैं ॥ ७ ॥

तस्मिन्नृषिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम् ।
सुखासीनं महातेजा मुनिमुख्यगणावृतम् ॥ ८ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उस बदरीवन में ऋषि-सभा के बीच शक्ति के पुत्र महर्षि पराशर[1] बैठे हुए थे, वे उस समय प्रधान-प्रधान मुनियों से घिरे हुए थे ॥ ८ ॥

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह ।
प्रदक्षिणाऽभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत् ॥ ९ ॥

उनको देखकर महर्षि वेदव्यास ने ऋषियों के सहित हाथ जोड़-कर, उनकी प्रदक्षिणा की, पश्चात् अभिवादन और स्तुति कर उनकी पूजा की ॥ ९ ॥

अथ सन्तुष्टहृदयः पराशरमहामुनिः ।
आह सुस्वागतं ब्रूहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः ॥ १० ॥

महर्षि वेदव्यास के इस प्रकार विनय, प्रदक्षिणा, अभिवादन एवं स्तुति से सभा के मध्य में बैठे हुए महर्षि पराशर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने व्यासजी का सुस्वागत एवं कुशल पूछा ॥ १० ॥

कुशलं सम्यगित्युक्त्वा व्यासः पृच्छत्यनन्तरम् ।
यदि जानासि मे भक्तिं स्नेहाद् वा भक्तवत्सल ! ॥ ११ ॥

---

१. 'पराकृताः शरा यस्मात् राक्षसानां वधार्थिनाम् ।
अतः पराशरो नाम ऋषिरुक्तो मनीषिभिः ॥'

अन्यच्च —

'परस्य कामदेवस्य शराः सम्मोहनादयः ।
न विद्यन्ते यतस्तेन ऋषिरुक्तः पराशरः ॥'

अन्यत्रापि—

'परेषु पापचित्तेषु नादत्ते कोपलक्षणम् ।
शरं यस्मात्ततः प्रोक्तः ऋषिरेव पराशरः ॥
परं मातुर्निजाया यदुदरं तदयं गतः ।
ऋचमुच्चार्य निर्भिद्य निरगात् स पराशरः ॥'

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्यासजी ने भी अपने पिता से कुशलादि कहकर उनसे पूछा—हे भक्तवत्सल ! यदि आप मेरी भक्ति से प्रसन्न हैं अथवा मुझमें पुत्रवत्सलता के कारण अधिक स्नेह रखते हैं, तो ॥ ११ ॥

धर्मं कथय मे तात ! अनुग्राह्यो ह्यहं तव ।
श्रुता मे मानवा धर्मा वासिष्ठाः काश्यपास्तथा ॥१२॥

हे महर्षे ! मुझे आप धर्म का लक्षण बताइए, क्योंकि मैं आपका शिष्य तथा पुत्र होने के कारण अनुग्रह का पात्र हूँ। मैंने मनु, वसिष्ठ, कश्यप, ॥ १२ ॥

गार्गीया गौतमीयाश्च तथा चौशनसाः स्मृताः ।
अत्रेर्विष्णोश्च संवर्ताद् दक्षादङ्गिरसस्तथा ॥ १३ ॥

गर्ग, गौतम, उशनस (शुक्र), अत्रि, विष्णु, संवर्त्त, दक्ष, अंगिरस, ॥ १३ ॥

शातातपाच्च हारीताद् याज्ञवल्क्यात्तथैव च ।
आपस्तम्बकृता धर्माः शङ्खस्य लिखितस्य च ॥१४॥

शातातप, हारीत, याज्ञवल्क्य, आपस्तम्ब, शंख लिखित, ॥ १४ ॥

कात्यायनकृताश्चैव तथा प्राचेतसान्मुनेः ।
श्रुत्वा ह्येते भवत्प्रोक्ताःश्रौतार्था मे न विस्मृताः ॥१५॥

कात्यायन तथा प्राचेतस् से निर्मित धर्मशास्त्रों को आपसे सुन लिया है, वे सभी श्रुतिसम्मत धर्मशास्त्र हैं, अभी वे मुझे विस्मृत नहीं हुए हैं ॥ १५ ॥

अस्मिन् मन्वन्तरे धर्माः कृत-त्रेतादिके युगे ।
सर्वे धर्माः कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे ॥१६॥

उनको इसी मन्वन्तर के सतयुग, त्रेता तथा द्वापरादि युगों के लिए महर्षियों ने निर्माण किया है, यद्यपि देश-धर्म, कुल-धर्म, जाति-धर्म, वयधर्म, गुणधर्म, शरीरधर्म, कालधर्म, आपद्-धर्म से धर्म के अनेक

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भेद हैं और वे कृतयुग में उत्पन्न हुए हैं, पर अब वे सभी धर्म इन कलिकाल में नष्ट हो गये हैं, क्योंकि कृत में धर्म के चार चरण, त्रेता में तीन, द्वापर में दो तथा कलि में एक पाद ही अवशिष्ट रहता है। इसलिए अधिकांश नष्ट हो चुके हैं ॥ १६ ॥

चातुर्वर्ण्यसमाचारं किञ्चित् साधारणं वद ।
चतुर्णामपि वर्णानां कर्त्तव्यं धर्मकोविदैः ॥१७॥

अतः कलि में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के सदाचार और उनकी शक्ति से होनेवाले साधारण धर्म को आप कहिए ॥ १७ ॥

ब्रूहि धर्मस्वरूपज्ञ सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ।
व्यास-वाक्यावसानेषु मुनिमुख्यः पराशरः ॥१८।

यद्यपि धर्म के अनेक लक्षण हैं, जैसे नैयायिक के मत में 'विहित-कर्मजन्यो धर्मः', 'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः', 'चोदनालक्षणो धर्मः,' 'विद्वद्भिः सेवितः पन्था नित्यमद्वेषरागिभिः', हृदयेनाभ्यनुज्ञातः यो धर्मः' इस प्रकार धर्म के अनेक लक्षण होते हुए भी हे महर्षे, आप वास्तविक धर्म के स्वरूप को साक्षात् करनेवाले हैं, अतः हे धर्म-स्वरूपज्ञ ! चारों वर्णों के मध्य में धर्मज्ञों के द्वारा किये जानेवाले स्थूल और सूक्ष्म धर्म को सविस्तर आप मुझसे कहिए (धर्म का स्थूल रूप जिसे मन्दमति भी कर सकते हैं, जैसे सन्ध्या-वन्दनादि, सूक्ष्म रूप जिसे सब न समझ पायें, जैसे 'द्रौपदी-विवाहादि' यह धर्म लोक और वेद से विरुद्ध होने के कारण केवल पण्डित ही समझ पाते हैं) ॥ १८ ॥

धर्मस्य निर्णयं प्राह सूक्ष्मं स्थूलं च विस्तरात् ।

वक्ष्यमाण-धर्मतत्त्व-ग्रहणाय श्रोतृसावधानतां विधत्ते—

शृणु पुत्र ! प्रवक्ष्यामि शृण्वन्तु मुनयस्तथा ॥१९॥

इस प्रकार व्यास के कहने पर महर्षि पराशर ने धर्म के स्थूल तथा सूक्ष्म रूपों का निर्णय कर, विस्तारपूर्वक अपने पुत्र तथा महर्षियों से कहा कि हे पुत्र तथा हे महामुनियो ! सुनो ॥ १९ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कल्पे कल्पे क्षये सत्या ब्रह्म-विष्णु-महेश्वराः ।
श्रुति-स्मृति सदाचार-निर्णेतारश्च सर्वदा ॥२०॥

कल्प-कल्प में जब सृष्टि का क्षय हो जाता है, उस समय धर्म विनष्ट होने पर भी बीजरूप से अवस्थित रहता है। अतः प्रलय के बाद जब सृष्टि होती है तो ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर ही सदैव धर्म का निर्णय किया करते हैं। (कल्प दो प्रकार का होता है—प्रथम कल्प, दूसरा महाकल्प। प्रथम कल्प ब्रह्मा का एक दिन का होता है, उस समय सृष्टि के निमित्तभूत महदादि का विनाश हो जाता है। दूसरा महाकल्प है, जिसमें ब्रह्मदेव की आयु समाप्त हो जाती है, उस महाकल्प में ब्रह्मदेव का भी नाश हो जाता है। पुराणों में चार प्रकार का प्रलय कहा है : १. नित्य प्रलय, २. नैमित्तिक प्रलय, ३. प्राकृत प्रलय, ४. आत्यन्तिक प्रलय। इनमें नैमित्तिक और प्राकृतिक प्रलय ऊपर कल्प और महाकल्प के रूप में कहा जा चुका है। जीवों का नित्य विनाश ही नित्य प्रलय कहा जाता है और जब जीव ज्ञान के द्वारा परमात्मा में विलीन हो जाता है, तो उसे आत्यन्तिक लय कहते हैं। इस प्रकार चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन कूर्म पुराण में वर्णित है)॥ २० ॥

न कश्चिद् वेदकर्ता च वेदं स्मृत्वा चतुर्मुखः ।
तथैव धर्मान् स्मरति मनुः कल्पान्तरेऽन्तरे ॥२१॥

धर्म का उद्गम स्थान वेद है, सृष्टि के प्रलय के अनन्तर जिस प्रकार वेद का अनादित्व है उसी प्रकार प्रवाह-परम्परा से धर्म भी अनादि है। वेद की अनादिता से धर्म की अनादिता सिद्ध होती है। वेद का कोई कर्त्ता नहीं है, सृष्टि के आदि में ब्रह्मा-परमेश्वर वेद पढ़-कर धर्म का स्मरण करते हैं और प्रत्येक कल्प के मनुओं को उसका उपदेश करते हैं। पश्चात् प्रत्येक मन्वन्तर में मनु सर्व-साधारण के लिए धर्मोपदेश करते है। प्रति युग में धर्म की विभिन्नता होने के कारण धर्मान् यह बहुवचन निर्देश है॥ २१ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे युगे ।
अन्ये कलियुगे नृणां युगरूपाऽनुसारतः ॥२२॥

कृतयुग में धर्म का प्रकार दूसरा है। इसी प्रकार त्रेता तथा द्वापर में भी धर्म के अन्य-अन्य प्रकार हैं। कलि में धर्म का प्रकार अन्य है। युगभेद होने से मनुष्यों की शक्ति का उपचय तथा ह्रास होने के कारण भिन्न-भिन्न युगों के मनुष्यों के धर्म भी भिन्न-भिन्न हैं। युग-युग में सामर्थ्य-भेद होने के कारण धर्म भी भिन्न हो गये हैं ॥२२॥

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते ।
द्वापरे यज्ञमेवाऽऽहुर्दानमेव कलौ युगे ॥२३॥

कृतयुग में तपःप्रधान धर्म, त्रेता में ज्ञान-प्रधान धर्म, द्वापर में यज्ञप्रधान धर्म तथा कलि में दानप्रधान धर्म का लक्षण कहा गया है ॥ २३ ॥

कृते तु मानवा धर्मास्त्रेतायां गौतमाः स्मृताः ।
द्वापरे शंखलिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः॥२४॥

सतयुग में मनुस्मृति, त्रेता में गौतमस्मृति, द्वापर में शंख-द्वारा लिखित स्मृति और कलि में तो पराशर स्मृति ही प्रधान मानी गयी है ॥ २४ ॥

त्यजेद् देशं कृतयुगे त्रेतायां ग्राममुत्सृजेत् ।
द्वापरे कुलमेकं तु कर्तारं तु कलौ युगे ॥२५॥

सतयुग में अधर्म होने पर देश का त्याग, त्रेता में अधर्म होने पर उस गाँव का त्याग, द्वापर में केवल उस कुल का त्याग तथा कलि में केवल अधर्म करनेवाले का ही त्याग किया जाता है। युगभेद से धर्म-भिन्न हो जाता है ॥ २५ ॥

कृते सम्भाषणादेव त्रेतायां स्पर्शनेन च ।
द्वापरे त्वन्नमादाय कलौ पतति कर्मणा ॥२६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सतयुग में पतित से संभाषण करने से, त्रेता में पतित का स्पर्श करने से, द्वापर में पतित का अन्न खाने से पुरुष पतित होता है, किन्तु कलि में पतित से संभाषणादि व्यवहार करने पर भी पतित नहीं होता, कलि में वह तभी पतित होता है जब पतित होने के योग्य बधादि पाप स्वयं करे ॥ २६ ॥

कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रेतायां दशभिर्दिनैः ।
द्वापरे चैकमासेन कलौ संवत्सरेण तु ॥२७॥

सतयुग में शाप उसी क्षण फल देता है, त्रेता में दश दिन, द्वापर में एक महीना तथा कलि में एक वर्ष के भीतर शाप का फल होता है ॥ २७ ॥

अभिगम्य कृते दानं त्रेतास्त्राहूय दीयते ।
द्वापरे याचमानाय सेवया दीयते कलौ ॥२८॥

सतयुग में गुरु आदि के पास जाकर दान किया जाता था। त्रेता में प्रतिगृहीता को स्वयं बुलाकर, द्वापर में माँगने पर दान दिया जाता था, क़िन्तु कलियुग में तो माँगने पर भी कोई उसे दान नहीं देता। कलि में उसीको दान दिया जाता है, जो दाता की सेवा करे ॥ २८ ॥

अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव मध्यमम् ।
अधमं याचमानाय सेवादानं तु निष्फलम् ॥२९॥

उपर्युक्त दान के निमित्त भेद होने से क्रमानुसार फलभेद भी होता है, जैसे जो दान सत्पात्र के घर स्वयं जाकर दिया जाता है वह दान 'उत्तम', है। पात्र को अपने घर बुलाकर जो दान दिया जाता है वह 'मध्यम', माँगने पर जो दान दिया जाये वह 'अधमदान' है, किन्तु जो दान सेवा की दृष्टि से दिया जाता है उस दान का कोई फल नहीं होता ॥ २९ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जितो धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं चैवानृतेन च ।
जिताश्चोरैश्च राजानः स्त्रीभिश्च पुरुषा जिताः ॥३०॥

कलि की यह विशेषता है कि इस युग में अधर्म, धर्म को जीत लेता है। झूठ सत्य पर विजयी होता है। चोर लोग राजा को अपने वश में कर लेते हैं तथा स्त्रियां पुरुषों को जीत लेती हैं। कलि में धर्म का एक ही पाद रह जाता है, तीन पाद नष्ट हो जाते हैं—यही धर्म की पराजय है, और अधर्म की विजय है ॥ ३० ॥

सीदन्ति चाऽग्निहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति ।
कुमार्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे सदा ॥३१॥

इस युग में अधर्म के बढ़ने से कोई अग्निहोत्र न करेगा। गुरुपूजा भी श्रद्धा न होने से विनष्ट हो जाती है, इस कलियुग में बिना ब्याही (७ या ८ वर्ष की) कन्याओं के द्वारा सन्तान की उत्पत्ति होगी ॥३१॥

कृते त्वस्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांसमाश्रिताः ।
द्वापरे रुधिरं चैव कलौ त्वन्नादिषु स्थिताः ॥३२॥

सतयुग में प्राण अस्थिगत रहते हैं, त्रेता में मांस में, द्वापर में रुधिर में तथा कलि में प्राण अन्नादि में अवस्थित रहते हैं। अतः कलि में सतयुग, त्रेता एवं द्वापर का धर्मानुष्ठान असम्भव है ॥ ३२ ॥

युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः ।
तेषां निन्दा न कर्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः॥३३॥

युग-युग में जो धर्म हैं, तथा युग-युग में जो ब्राह्मण हैं उनकी निन्दा नहीं करनी चाहिए, क्योंकि धर्म तथा ब्राह्मण युग के प्रतीक हैं ॥ ३३ ॥

युगे युगे तु सामर्थ्यं शेषं मुनिविभाषितम् ।
पराशरेण चाऽप्युक्तं प्रायश्चित्तं विधीयते ॥३४॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

युग-युग में महर्षियों ने तथा महर्षि पराशर ने पापों का प्रायश्चित्त सामर्थ्यानुसार ही कहा है ॥ ३४ ॥

अहमद्यैव तत्सर्वमनुस्मृत्य ब्रवीमि वः ।
चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृण्वन्तु ऋषिपुङ्गवाः ॥३५॥

पराशरजी ने महर्षियों से कहा—हे महर्षियो ! युगानुसार होनेवाले चारों वर्णों के आचार तथा धर्म को स्मरण कर कह रहा हूँ, आप लोग उसे सुनें ॥ ३५ ॥

पराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६॥

महर्षि पराशर के द्वारा वेदार्थ को विचारकर कहा गया यह वर्णाश्रमाचार अत्यन्त पुण्य, पवित्र तथा पाप का नाशक है। यह विशेषकर धर्म के संस्थापन तथा ब्राह्मणों के हित की दृष्टि से कहा गया है ॥ ३६ ॥

चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः ।
आचारभ्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः ॥३७॥

सदाचार चारों वर्णों के धर्म का पालक है। इसलिए जो सदाचार का पालन नहीं करते, उनसे धर्म विमुख हो जाता है ॥ ३७ ॥

षट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथि पूजकः ।
हुतशेषं तु भुञ्जानो ब्राह्मणो नाऽवसीदति ॥३८॥

यजन-याजन, अध्ययन-अध्यापन, दान एवं प्रतिग्रह इन छह कर्मों में लगा रहनेवाला, देवता तथा अतिथि की पूजा करने-

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वाला तथा पाकयज्ञ (बलिवैश्वदेव, होम तथा गोग्रासादि) से शेष भोजन करनेवाला[१] ब्राह्मण कभी दुःखी नहीं होता ॥ ३८ ॥

सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च पूजनम् ।
आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिने दिने ॥३९॥

ब्राह्मण का साधारण धर्म कहकर उसका आह्निक धर्म कहते हैं। सन्ध्या, स्नान, जप, होम, देवपूजन, अतिथि-सत्कार तथा वैश्वदेव– ये छह धर्म ब्राह्मण को नित्य करना चाहिये ॥ ३९ ॥

इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा ।
सम्प्राप्तो वैश्वदेवान्ते सोऽतिथिः स्वर्गसंक्रमः ॥४०॥

बलिवैश्वदेव कर लेने पर भोजन के पूर्व यदि गृहस्थ के घर इष्ट (सखा, सम्बन्धी, बान्धव), द्वेष्य (शत्रु), मूर्ख अथवा पण्डित आ जाय तो उसका स्वागत-सत्कार करने से स्वर्ग प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

दूराच्चोपगतं श्रान्तं वैश्वदेव उपस्थितम् ।
अतिथिं तं विजानीयान्नाऽतिथिः पूर्वमागतः ॥४१॥

---

१. ब्राह्मण-लक्षण—

सत्यं दानं तपः शौचमानृशंस्यं दामो घृणा ।
दृश्यन्ते यत्र विप्रेन्द्र ! स ब्राह्मण इति स्मृतः ॥
जितेन्द्रियो धर्मपरः स्वाध्यायनिरतः शुचिः ।
कामक्रोधौ वशौ यस्य तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
यस्य चात्मसमो लोको धर्मज्ञस्य मनस्विनः ।
स्वयं धर्मेण चरति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
योऽध्यापयेदधीते वा याजयेद् वा यजेत वा ।
दद्याद् वा यथाशक्ति तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥
क्षमा दया च विज्ञानं सत्यं चैव दमः शमः ।
अध्यात्मनिरतिर्ज्ञानमेतद् ब्राह्मणलक्षणम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

रास्ते में दूर से चलकर थका हुआ भूखा-प्यासा व्यक्ति यदि वैश्वदेव काल में गृहस्थ के घर उपस्थित हो जाय तो उसे ही अतिथि कहते हैं। प्रातःकाल वैश्वदेव के पूर्व घर पर आनेवाला व्यक्ति अतिथि नहीं कहा जाता ॥ ४१ ॥

नैकग्रामीणमतिथिं संगृह्णीत कदाचन ।
अनित्यमागतो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥४२॥

तिथि-विशेष तथा लाभ-विशेष की अपेक्षा न रखकर भूख और प्यास से पीड़ित व्यक्ति यदि वैश्वदेव के अन्त में गृहस्थ के घर आ जाय तो उसे ही अतिथि कहते हैं। उसके आने का कोई क्रम निश्चित न होने से ही वह अतिथि है। पर जिसमें गृहस्थ रहता हो, उसी गांव का भूख-प्यास से पीड़ित व्यक्ति वैश्वदेव के अन्त में उपस्थित होने पर भी अतिथि नहीं है ॥ ४२ ॥

अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं पूजयेत् स्वागतादिना ।
तथाऽऽसनप्रदानेन पादप्रक्षालनेन च ॥४३॥

रास्ते में थके हुए भूखे-प्यासे अतिथि को वैश्वदेवकाल में घर आने पर गृहस्थ उससे सुस्वागत पूछे। तत्पश्चात् उसकी पूजा करे, फिर अर्घ्य, आसन देकर उसका पादप्रक्षालन करे ॥ ४३ ॥

श्रद्धया चाऽन्नदानेन प्रियप्रश्नोत्तरेण च ।
गच्छतश्चाऽनुयानेन प्रीतिमुत्पादयेद् गृही ॥४४॥

फिर श्रद्धा से भोजन कराकर प्रेमपूर्वक उससे कुशल-मंगल पूछे। जब वह जाने लगे तो उसके पीछे-पीछे कुछ दूर तक अनुगमन करे (जाये)। इस प्रकार तथा अन्य प्रकार के उपचारों से उसे प्रसन्न करे ॥४४॥

अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहाद् प्रतिनिवर्तते ।
पितरस्तस्य नाऽश्नन्ति दशवर्षाणि पञ्च च ॥४५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिसके घर पर आया हुआ अतिथि अन्नादि सत्क्रिया के अभाव से निराश होकर लौट जाता है, उस गृहस्थ के पितर १५ वर्षों तक उसका अन्न ग्रहण नहीं करते ॥ ४५ ॥

काष्ठभारसहस्रेण घृतकुम्भशतेन च ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमा निरर्थकः ॥४६॥

जिस गृहस्थ के घर से अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसका हजारों मन काष्ठ एवं सैकड़ों घड़े घृत से किया गया होम भी व्यर्थ ही है ॥४६॥

सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं दत्तं न नश्यति ॥४७॥

जिस प्रकार उत्तम खेत में बीज बोने से विनष्ट नहीं होता, प्रत्युत उत्तम फल देता है अथवा सुपात्र में धन को धरोहर रखने से जिस प्रकार वह सुरक्षित रहता है। उसी प्रकार गृहस्थ को सत्पात्र में अन्नादि दान करने से उत्तम फल की प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥

न पृच्छेद् गोत्रचरणे न स्वाध्यायं श्रुतं तथा ।
हृदये कल्पयेद् देवं सर्वदेवमयो हि सः ॥४८॥

गृहस्थ अपने घर पर वैश्वदेव के अन्त में आये हुए उस अतिथि का गोत्र तथा शाखा न पूछे। उसका स्वाध्याय तथा श्रुत (शास्त्रश्रवण) भी न पूछे। उसे अपने हृदय में देवता ही समझे, क्योंकि अतिथि सर्वदेवमय होता है ॥ ४८ ॥

अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वश्चाऽतिथिस्तथा ।
वेदभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वे दिने दिने ॥४९॥

उत्तम व्रत करनेवाला यति, वेदाभ्यास में निरत ब्रह्मचारी तथा अतिथि ये तीनों अपूर्व हैं– इनका गृहस्थ प्रतिदिन स्वागत, अर्घ्यादि-दान से पूजन करे ॥ ४९ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते भिक्षुके गृहमागते ।
उद्धृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्त्वा विसर्जयेत् ॥५०॥

वैश्वदेव काल में यदि भिक्षुक (संन्यासी) घर पर आ जाय तो पाक में से वैश्वदेव के लिये अलग अन्न निकालकर संन्यासी को भिक्षा देकर बिदा कर देना चाहिये। पश्चात् वैश्वदेव आदि क्रिया कर भोजन करे ॥ ५० ॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्न-स्वामिनावुभौ ।
तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥५१॥

संन्यासी और ब्रह्मचारी दोनों पक्वान्न के अधिकारी हैं। इन दोनों को बिना अन्न दिये ही जो भोजन कर लेता है, उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिये ॥ ५१ ॥

दद्याच्च भिक्षात्रितयं परिव्राड् ब्रह्मचारिणाम् ।
इच्छया च ततो दद्याद् विभवे सत्यवारितम् ॥५२॥

ब्रह्मचारी एवं संन्यासी को भिक्षा का तिगुना देना चाहिये। (ग्रासमात्र तु भिक्षा स्यात्) इसके बाद यदि ऐश्वर्य अधिक हो तो अधिक भी दिया जा सकता है। उसमें कोई रोक नहीं है ॥ ५२ ॥

यतिहस्ते जलं दद्याद् भैक्ष्यं दद्यात् पुनर्जलम् ।
तद् भैक्ष्यं मेरुणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥५३॥

संन्यासी के घर आ जाने पर प्रथम जल, पश्चात् भिक्षा तथा तदुपरान्त जल देना चाहिए। इस प्रकार दी गयी भिक्षा सुमेरु के तुल्य तथा समुद्र के समान हो जाती है ॥ ५३ ॥

यस्यच्छत्रं हयश्चैव कुञ्जरारोहमृद्धिमत् ।
ऐन्द्रस्थानमुपासीत तस्मात् तं न विचारयेत् ॥५४॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस संन्यासी को छत्र, घोड़ा तथा हाथी आदि उत्तम वाहन हों तथा इन्द्रासन के समान शुभ स्थान हो उस संन्यासी की पूजा करनी चाहिए। इसमें कोई विचार न करे ॥ ५४ ॥

वैश्वदेवकृतं पापं शक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुम् ।
न हि भिक्षुकृतं दोषं वैश्वदेवो व्यपोहति ॥५५॥

बलिवैश्वदेव की क्रिया में यदि कोई त्रुटि रह जाय तो उस त्रुटि को भिक्षु-सम्मान दूर कर सकता है। किन्तु यदि भिक्षु के सम्मान में कोई त्रुटि रह जाती है, तो उसे बलिवैश्वदेव भी दूर नहीं कर सकते ॥ ५५ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु ये भुञ्जन्ते द्विजातयः ।
तेषामन्नं न भुञ्जीत काकयोनिं व्रजन्ति ते ॥५६॥

जो द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य) बिना बलिवैश्वदेव किये ही भोजन कर लेते हैं, उनका अन्न कदापि भोजन करने योग्य नहीं होता, और वे काकयोनि में जन्म लेते हैं। ५६ ॥

अकृत्वा वैश्वदेवं तु भुञ्जन्ते ये द्विजाधमाः ।
सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥५७॥

जो पतित ब्राह्मण बिना बलिवैश्वदेव किये ही भोजन कर लेते हैं, उनके किये गये किसी भी सत्कर्म का फल नहीं होता। वे अशुचि (अपवित्र) नरक में जाते हैं ॥ ५७ ॥

वैश्वदेवविहीना ये आतिथ्येन बहिष्कृताः ।
सर्वे ते नरकं यान्ति काकयोनिं व्रजन्ति च ॥५८॥

जो बलिवैश्वदेव नहीं करते और न अतिथि-सम्मान ही करते हैं, वे सभी नरक के भागी होते हैं और उन्हें कौवे की योनि मिलती है ॥ ५८ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिरो वेष्ट्य तु यो भुङ्क्ते दक्षिणाभिमुखस्तु यः।
वामपादकरः स्थित्वा तद् वै रक्षांसि भुञ्जते ॥५९॥

जो मनुष्य शिर पर पगड़ी या टोपी रखकर अथवा बायें पैर पर हाथ रखकर दक्षिणाभिमुख हो भोजन करता है, सह भोजन राक्षस लोग खा जाते हैं ॥ ५९ ॥

यतये काञ्चनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणे ।
चोरेभ्योऽप्यभयं दत्त्वा दाताऽपि नरकं व्रजेत् ॥६०॥

संन्यासी को सोना आदि देनेवाला, ब्रह्मचारी को ताम्बूल देनेवाला तथा चोर को अभय देनेवाला–ये तीनों प्रकार के दाता नरकगामी होते हैं अर्थात् इनको नरक प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

शुक्लवस्त्रं च यानं च ताम्बूलं धातुमेव च ।
प्रतिगृह्य कुलं हन्यात् प्रतिगृह्णाति यस्य च ॥६१॥

जो संन्यासी श्वेत वस्त्र, सवारी, ताम्बूल तथा धातु आदि का प्रतिग्रह लेते हैं वे अपने कुल का तथा उस देनेवाले के भी कुल का नाश करते हैं ॥ ६१ ॥

चोरो वा यदि चाण्डालः शत्रुर्वा पितृघातकः ।
वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते सोऽतिथिः स्वर्गसङ्क्रमः ॥६२॥

चोर, चाण्डाल, शत्रु अथवा स्वयं पिता का वध करनेवाला यदि वैश्वदेव काल में घर पर उपस्थित हो जाये, तो उस अतिथि को स्वर्गप्राप्ति का साधन मानना चाहिए ॥ ६२ ॥

न गृह्णाति तु यो विप्रो ह्यतिथिं वेदपारगम् ।
अदत्त्वं चाऽन्नपात्रं तु भुक्त्वा भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥६३॥

जो ब्राह्मण वेदपारंगत अतिथि के घर आने पर सत्कार नहीं करता तथा उसे अन्नादि बिना दिये ही स्वयं भोजन कर लेता है, वह पाप का भोजन करता है ॥ ६३ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुपममकण्टकम् ।
वापयेत् सर्वबीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥६४॥

ब्राह्मण का मुख सुन्दर क्षेत्र-खेत के समान है, जिसमें कंटक नहीं रहत । उस ब्राह्मण के मुखरूपी क्षेत्र मे बीजों को बोने से सम्पूर्ण कामनाओं की सिद्धि होती है । अतः ब्राह्मण को भोजन आदि से सन्तुष्ट करना चाहिए । ६४॥

सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं सुपात्रे निक्षिपेद्धनम् ।
सुक्षेत्रे च सुपात्रे च ह्युप्तं तन्न विनश्यति ॥६५॥

बुद्धिमान् पुरुष, सुन्दर ब्राह्मण के मुखरूपी क्षेत्र में बीज बोये और सुपात्र में धन का धरोहर रखे । क्योंकि सुन्दर खेत में बोये गये बीज और सत्पात्र मे रखा गया निक्षेप (धरोहर) का नाश नहीं होता ॥६५॥

अव्रता ह्यनधीयाना यत्र भैक्ष्यचरा द्विजाः ।
तं ग्रामं दण्डयेद् राजा चोरभयप्रदो हि सः ॥६६॥

अध्ययन-शून्य ब्रह्मचर्यादि व्रत का अनुष्ठान न करनेवाले ब्राह्मण जिस गाँव मे भिक्षा से अपनी जीविका करते हों । राजा को उचित है कि वह उस गाँव को दण्ड दे, क्योंकि वह गाँव चोरों को आश्रय देनेवाला है ॥६६॥

क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रदण्डयन् ।
निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥६७॥

क्षत्रिय हाथ में शस्त्र लेकर दुष्टों को दंड देता हुआ प्रजा की रक्षा करे । अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे तथा धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करे ॥६७॥

न श्रीः कुलक्रमायाता भूषणोल्लिखिताऽपि वा ।
खड्गेनाक्रम्य भुञ्जीत वीरभोग्यां वसुन्धराम् ॥६८॥

 Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुलपरम्परा से समागत लक्ष्मी भी, बिना पराक्रम के स्थिर नहीं रहती और न भूषणादि धारण से ही लक्ष्मी की शोभा होती है। इसलिए पराक्रपूर्वक तलवार से जीतकर लक्ष्मी का उपभोग करना चाहिए। यह पृथ्वी वीरों से ही भोगने योग्य है ॥६८॥

पुष्पं पुष्पं विचिनुयान् मू[illegible] न कारयेत् ।
मालाकार इवाऽरामे न यथाऽङ्गारकारकः ॥६९॥

बुद्धिमान् पुरुष माली की तरह वृक्षरूपी प्रजा से धीरे-धीरे पुष्पों का संचय करे, उसका मूलच्छेदन न करे। जिस प्रकार आग लगा देनेवाला, वृक्ष की जड़ जला देता है, फिर उसे पुष्प-प्राप्ति की सम्भावना नहीं रहती ॥६९॥

लाभकर्म तथा रत्नं गवां च परिपालनम् ।
कृषिकर्म च वाणिज्यं वैश्यवृत्तिरुदाहृता ॥७०॥

ब्याज लेना, रत्नों का क्रय-विक्रय, गो-पालन, खेती तथा व्यापार– ये वैश्य की जीविका कही गयी हैं ॥७०॥

शूद्रस्य द्विज-शुश्रूषा परमो धर्म उच्यते ।
अन्यथा कुरुते किञ्चित् तद् भवेत्तस्य निष्फलम् ॥७१॥

द्विजाति की सेवा ही शूद्र का सबसे बड़ा धर्म है। जो शूद्र द्विज-शुश्रूषा को छोड़कर अन्य कार्य करता है, उसका किया गया सभी कर्म निष्फल है ॥७१।

लवणं मधु तैलं च दधि तक्रं घृतं पयः ।
न दुष्येच्छूद्रजातीनां कुर्यात् सर्वेषु विक्रयम् ॥७२॥

नमक, मधु, तेल, दही, मटठा, घी तथा दूध शूद्र के हाथ से भी दूषित नहीं होता। इसलिए शूद्र इन सभी वस्तुओं का विक्रय सबके लिए कर सकता है ॥७२॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विक्रीणन् मद्य-मांसानि ह्यभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
कुर्वन्नगम्यागमनं शूद्रः पतति तत्क्षणात् ॥७३॥

मद्य तथा मांस का विक्रय करने से, अभक्ष्य वस्तु का भक्षण करने से तथा अगम्या स्त्री से गमन करने पर शूद्र तत्क्षण ही पतित हो जाता है। इसलिए इन कर्मों को शूद्र त्याग दे ॥७३॥

कपिलाक्षीरपानेन ब्राह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम् ॥७४॥

इति पराशरीय-धर्मशास्त्रे चातुर्वर्ण्याचारो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

कपिला गौ का दूध पीने से, ब्राह्मणी के साथ संगम करने से तथा वेद के अक्षर का विचार करने (अर्थात् वेद पढ़ने) से शूद्र को निश्चय ही नरक होता है ॥७४॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका में पाराशरप्रोक्त धर्मशास्त्र में
चारों वर्णों के धर्माचार नामक प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

२. द्वितीयोऽध्यायः

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे ।
धर्मं साधारणं शक्त्या चातुर्वर्ण्याश्रयागतम् ॥ १ ॥
तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं पराशरवचो यथा ।

प्रथमाध्याय में विशेष एवं साधारण धर्म कहकर ग्रन्थकार इस द्वितीय अध्याय में कहते हैं कि अब इसके अनन्तर गृहस्थ के कर्म एवं आचार तथा उनसे शक्ति के अनुसार किये जानेवाले साधारण धर्म को मैं कहूँगा। यह कर्म आचार तथा सामान्य धर्म, कलि में चारों वर्णों का क्रमपूर्वक चला आया है, ऐसा पराशर का मत है ॥१½॥

षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्म च कारयेत् ॥ २ ॥

१. '-सहितो' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अध्ययन, अध्यापन, यजन, याजन, दान तथा प्रतिग्रह इन छः कर्मों में लगा हुआ ब्राह्मण कृषि-कर्म (खेती) भी करावे ॥२॥

क्षुधितं तृषितं श्रान्तं बलीवर्दं न योजयेत् ।
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीबं वृषं विप्रो न वाहयेत् ॥ ३ ॥

भूखे, प्यासे, थके हुए, अंगहीन, रोगी तथा बधिया (क्लीब) बैल को ब्राह्मण हल में न जोते ॥३॥

स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं सुनर्दं षण्ढवर्जितम् ।
वाहयेद् दिवसस्याऽर्द्धं पश्चात् स्नानं समाचरेत् ॥ ४ ॥

जिस बैल का अंग पुष्ट हो तथा जो नीरोग हो, ऐसे अहंकार से भरे हुए तथा सुन्दर हँड़कनेवाले बैल को, जो बधिया न हो, ब्राह्मण आधा दिन जोतकर अनन्तर स्नान करे ॥४॥

जप्यं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं चैवमभ्यसेत् ।
एक-द्वि-त्रि-चतुर्विप्रान् भोजयेत् स्नातकान् द्विजाः ॥५॥

ब्राह्मण को प्रतिदिन जप, देव पूजन, होम तथा वेदों का स्वाध्याय करना चाहिए । और एक, दो, तीन अथवा चार स्नातक ब्रह्मचारी को प्रतिदिन भोजन भी कराना चाहिए ॥५॥

स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे धान्यैश्च स्वयमर्जितैः ।
निर्वपेत् पञ्चयज्ञांश्च[1] क्रतुदीक्षां च कारयेत् ॥ ६ ॥

अपने खेत में अपनी कमाई के द्वारा उत्पन्न किये गये धान्य से गृहस्थ ब्राह्मण प्रतिदिन पंचयज्ञ (बलिवैश्वदेवादि) तथा यज्ञ-दीक्षादि भी करावे ॥६॥

---

१. '-यज्ञानि' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तिला रसा न विक्रेया विक्रेया धान्यतः समाः ।
विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृण-काष्ठादि-विक्रयः ॥ ७ ॥

कलि में भूम्यादि के अभाव में यदि ब्राह्मण कृषि न कर सके, तो उसे वाणिज्य करना चाहिए, परन्तु तिल और रस (नमक, गुड़ आदि) का विक्रय कदापि नहीं करना चाहिए। यदि तिल और रस का विक्रय (बेचना) आवश्यक हो हो तो उसका नकद विक्रय न कर अन्न से बदला करे। उसे तृण (भूसा आदि) तथा काष्ठ (लकड़ी) आदि का विक्रय कर अपनी जीविका चलानी चाहिए ॥७॥

ब्राह्मणश्चेत् कृषिं कुर्यात्तन्महादोषमाप्नुयात् ।
अष्टगव्यं धर्महलं षड्गवं वृत्तिलक्षणम् ॥ ८ ॥

ब्राह्मण को कृषि कर्म करने से बहुत बड़ा पाप लगता है। यदि कृषि के बिना निर्वाह न हो सके, तो धर्महल से खेती करे, जो दो-दो बैलों को एक-एक प्रहर जुते रहने के कारण आठ बैलों से सम्पन्न होता है। तथा धर्महल (आठ बैलों) के अभाव में अपनी वृत्ति के लिए छः बैलों की भी खेती कर सकता है। इसे वृत्तिहल भी कहते हैं ॥८॥

चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं गोजिघांसुवत् ।
द्विगवं वाहयेत् पादं मध्याह्ने तु चतुर्गवम् ॥ ९ ॥

निर्दयी पुरुष ही चार बैलों को आठ पहर तक तथा गोहत्यारा दो बैलों को आठ पहर तक जोतता है। इसलिए चार तथा दो बैलों को पूरे दिन जोतकर ब्राह्मण कृषि कर्म न करे। दो बैलों को एक प्रहर तक, फिर दो बैलों (इस प्रकार कुल चार बैलों) को मध्याह्न (दूसरे प्रहर) तक ॥९॥

षड्गवं तु त्रियामाहेऽष्टभिः पूर्णं तु वाहयेत् ।
नाऽऽप्नोति[1] नरकेष्वेवं वर्त्तमानस्तु वै द्विजः ॥१०॥

---

१. 'याति' इति पाठान्तरम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

फिर दो बैलों अर्थात् कुल छः बैलों को तीसरे प्रहर तक तथा फिर दो बैलों को (इस प्रकार कुल आठ बैलों को) चौथे प्रहर तक। इस प्रकार आठ बैलों के द्वारा पूरे दिन धर्महल चलाकर ब्राह्मण नरक का भागी नहीं होता ॥१०॥

दानं दद्याच्च वै तेषां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ।
संवत्सरेण यत्पापं मत्स्यघाती समाप्नुयात् ॥११॥

खेती करनेवाला दान भी करे, इस प्रकार गृहस्थ द्विज का यह अत्युत्तम स्वर्ग साधन है। मछली मारनेवाला एक वर्ष में जितना पाप कर सकता है ॥११॥

अयोमुखेन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली ।
पाशका मत्स्यघाती च व्याधः शाकुनिकस्तथा ॥१२॥

हल जोतनेवाला उतना पाप लोहे जड़े हुए काठ के हल से बैलों को जोतकर एक ही दिन में प्राप्त कर लेता है। १. फाँसी लगानेवाला, २. मछली मारनेवाला, ३. व्याध, ४. चिड़ीमार ॥१२॥

अदाता कर्षकश्चैव पञ्चैते समभागिनः ।
कण्डनी पेषणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी ॥१३॥

तथा ५. हल जोतकर अन्न का दान करनेवाला कृषक इन पाँचों को समान पाप लगता है। गृहस्थ को ओखली, चक्की, चूल्ही, जल का घड़ा तथा झाड़ू ॥१३॥

पञ्चसूना गृहस्थस्य अहन्यहनि वर्त्तते ।
वैश्वदेवो बलिर्भिक्षा गोग्रासो हन्तकारकः[1] ॥१४॥

---

१. ग्रासमात्रं तु भिक्षा स्यात् अग्रं ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्रं चतुर्गुणीकृत्य हन्तकारो विधीयते ॥ —इति मनुः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इन पाँचों के द्वारा प्रतिदिन जीवहत्या होने से पाप लगता रहता है। इसलिए उसे प्रतिदिन वैश्वदेव, बलि, भिक्षा, गोग्रास तथा हन्त-कार करना चाहिए ॥१४॥

गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात् सूनादोषैर्न लिप्यते।
वृक्षांश्छित्वा महीं भित्वा हत्वा च कृमि-कीटकान् ॥१५॥

ऐसा करनेवाले गृहस्थ को उपर्युक्त पाँचों स्थान की जीव-हत्या का दोष नहीं लगता। खेती में वृक्षों के काटने से, पृथ्वी को हल से फाड़ने में तथा अधोमुख हल से जोतने में, कृमि, कीट के मरने से गृहस्थ को बहुत बड़ा पाप लगता है ॥१५॥

कर्षकः खलयज्ञेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
यो न दद्याद् द्विजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः ॥१६॥

उन सभी पापों की निवृत्ति के लिए गृहस्थ को खलयज्ञ करना चाहिए। जो अन्न की राशि हो जाने पर ब्राह्मणों को दान नहीं देता, ॥१६॥

स चौरः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नं तं विनिर्दिशेत् ।
राज्ञ दत्वा तु षड्भागं देवानां चैकविंशतिम् ॥१७॥

वह चोर तथा पापी है, उसे ब्रह्महत्यारा कहना चाहिए। इसलिए गृहस्थ को अन्न की राशि प्राप्त होने पर उसका छठा भाग राजा को, इक्कीसवाँ भाग देवताओं को, ॥१७॥

विप्राणां त्रिंशकं भागं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
क्षत्रियोऽपि कृषिं कृत्वा देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥१८॥

तीसवाँ भाग ब्राह्मणों को अवश्य देना चाहिए। ऐसा करनेवाला गृहस्थ द्विज सभी प्रकार के पापों से छुटकारा पा जाता है। यह तो

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहस्थ ब्राह्मण की बात कही। क्षत्रिय इसी प्रकार खेती कर ब्राह्मण तथा देवताओं का पूजन करे ॥१८॥

वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात् कृषि-वाणिज्य-शिल्पकान् ।
विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवा-विवर्जिताः ॥१९॥

वैश्य तथा शूद्र भी खेती, व्यापार तथा कारीगरी का काम करे। परन्तु यदि शूद्र ब्राह्मण की सेवा को छोड़कर कोई अन्य कार्य करे, तो वह अपने कर्म से विरुद्ध कर्म करनेवाला होता है ॥१९॥

भवन्त्यल्पायुषस्ते वै निरयं यान्त्यसंशयम् ।
चतुर्णामपि वर्णानामेष धर्मः सनातनः ॥२०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे गृहस्थधर्माचारो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

वे अल्पायु तथा मरने पर नरक के भागी होते हैं। यह धर्म चारों वर्णों का सदैव से चला आया है, इसलिए यही सनातन धर्म है ॥ २० ॥

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका में पाराशर-प्रोक्त धर्मशास्त्र में गृहस्थधर्माचार नामक द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

●

३. तृतीयोऽध्यायः

अतः शुद्धिं[2] प्रवक्ष्यामि जनने मरणे तथा ।
दिनत्रयेण शुद्धयन्ति ब्राह्मणाः[3] प्रेतसूतके ॥ १ ॥

गृहस्थ का धर्माचार कहकर, ग्रन्थाकार कहते हैं कि अब जन्म तथा मरण में जितने दिनों के अनन्तर गृहस्थ की शुद्धि होती है, उसे मैं कहूँगा। ब्राह्मण लोग मरणाशौच मे तीन दिनों में शुद्ध होते हैं।

१. '–शुश्रूष-' इति क्वचित्पुस्तके। २. 'परं' इति पा०। ३. 'जन्म' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

परन्तु यह शुद्धि समानोदकों अर्थात् सात से चौदह पीढ़ी तक के लोगों के लिए ही जाननी चाहिए ॥१॥

क्षत्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पञ्चदशाहकैः ।
शूद्रः शुद्ध्यति मासेन पराशरवचो यथा ॥ २ ॥

मरणशौच में क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों में तथा शूद्र एक मास में शुद्ध होता है, ऐसा पराशर का मत है। (यह शुद्धि सपिण्डों–सात पीढ़ी तक के भीतर के लोगों के लिए जाननी चाहिए) ।२॥

उपासने तु विप्राणामङ्गशुद्धिश्च जायते ।
ब्राह्मणानां प्रसूतौ[1] तु देहस्पर्शो विधीयते ॥ ३ ॥

परन्तु मरणाशौच में भी अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण को उतने समय तक अशौच नहीं लगता, जितने समय तक वह अग्निहोत्र कर सकता है। जननाशौच में ब्राह्मण के शरीर के स्पर्श हो जाने पर भी कोई दोष नहीं लगता ॥३॥

जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः ।
वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

जननाशौच में ब्राह्मण दश दिनों में, क्षत्रिय बारह दिनों में, वैश्य पन्द्रह दिनों में तथा शूद्र एक महीने में ही शुद्ध हो जाता है ॥४॥

एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो योऽग्नि-वेद-समन्वितः ।
त्र्यहात् केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः ॥ ५ ॥

परन्तु जो ब्राह्मण अग्निहोत्र करनेवाला तथा वेदों का स्वाध्याय करनेवाला हो वह जननाशौच में एक ही दिन में शुद्ध हो जाता है। केवल वेदज्ञ तीन दिनों में तथा अग्निहोत्र एवं वेदज्ञान इन दोनों से शून्य ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होता है ॥५॥

---

१. विशुद्धौ' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जन्मकर्म-परिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः ।
नामधारक-विप्रस्य दशाहं सूतकं भवेत् ॥ ६ ॥

जो ब्राह्मण जन्म से ही अपने कर्म (अध्ययन, अध्यापनादि षट्कर्म) से परिभ्रष्ट हो तथा सन्ध्योपासन आदि नित्यकर्म से रहित हो, वह केवल नाममात्र से ही ब्राह्मण हो, उसे दश दिनों का अशौच लगता है ॥६॥

अजा गावो महिष्यश्च ब्राह्मणी नवसूतिका ।
दशरात्रेण संशुद्ध्येद् भूमिष्ठं च नवोदकम् ॥ ७ ॥

बकरी, गाय, भैंस तथा ब्राह्मणी नव-प्रसूता होने पर दश दिनों में शुद्ध हो जाती हैं। इसी प्रकार वर्षा का जल यदि पृथ्वी पर एकत्र हो गया हो तो वह भी दश दिनों में शुद्ध हो जाता है ॥७॥

एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग् दारनिकेतनाः ।
जन्मन्यपि विपत्तौ च तेषां तत्सूतकं भवेत् ॥ ८ ॥

सपिण्ड (सात पीढ़ी) के भीतर भिन्न-भिन्न जाति की स्त्रियों से उत्पन्न होनेवाले तथा पृथक्-पृथक् गृहों में निवास करनेवाले पुत्र परस्पर दायाद कहे जाते हैं। उन्हें भी जननाशौच तथा मरणाशौच उसी प्रकार लगता है, जिस प्रकार पुत्रादि के उत्पन्न होने पर पिता को लगता है ॥८॥

प्राप्नोति[1] सूतकं गोत्रे चतुर्थपुरुषेण तु ।
दायाद् विच्छेदमाप्नोति पञ्चमो वाऽऽत्मवंशजः ॥ ९ ॥

गोत्र में भिन्न जाति की स्त्री से उत्पन्न पुरुष की चार पीढ़ी तक अशौच लगता है। मूल पुरुष की भिन्न जाति की स्त्री से उत्पन्न पाँचवाँ पुस्त पिण्ड का अधिकारी नहीं रहता ॥९॥

---

१. 'तावत्तत्' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षण्णिशाः पुंसि पञ्चमे ।
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे तु दिनत्रयात् ॥१०॥

सपिण्ड में भी विशेष कहते हैं—मृत पुरुष के चार पुस्त तक दश रात, पाँचवीं पीढ़ी में छः दिन तक तथा छठी पीढ़ी के बाद चार दिन में शुद्धि हो जाती है। सपिण्ड में दश रात तक अशौच लगता है। यह वचन भी इसी का विकल्प है ॥१०॥

भृग्वग्निमरणे[1] चैव देशान्तरमृते[2] तथा ।
बाले प्रेते च संन्यस्ते सद्यः शौचं विधीयते ॥११॥

पहाड़ की ऊँची चोटी से गिरकर, अग्नि में जलकर, परदेश में, जन्मकाल में ही तथा संन्यास लेकर मरण हो जाने से; उसी क्षण स्नान कर लेने से ही शुद्धि हो जाती है। उपर्युक्त प्रकार से मृत्यु हो जाने पर अशौच नहीं लगता है ॥११॥

देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्रूयते यदि ।
न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥१२॥

यदि कोई अपना सगोत्र (सपिण्ड) देशान्तर में निवास करता हुआ मर जाये और उसकी मृत्यु का समाचार नौ दिन के अनन्तर मिले तो सगोत्र को त्रिरात्र अथवा एक रात्र का भी अशौच नहीं लगता। वह सद्यः (उसी क्षण) स्नान कर शुद्ध हो जाता है ॥१२॥

देशान्तरं गतो विप्रः प्रवासात् कालकारितात् ।
देहनाशमनुप्राप्तस्तिथिर्न ज्ञायते यदि ॥१३॥

परदेश में गये हुए ब्राह्मण की मृत्यु यदि दुर्भाग्यवश वहीं हो जाय और उसके मरने की तिथि आदि न ज्ञात हो, तो ॥१३॥

---

१. 'ऋङ्ग्यग्नि–' इति पा० ।

२. 'महानद्यन्तरं ह्यत्र गिरिर्वा व्यवधायकः ।
वाचो यत्र विभिद्यन्ते तद् देशान्तरमुच्यते ।।'—इति मनुः

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कृष्णाऽष्टमी त्वमावास्या कृष्णा चैकादशी च या ।
उदकं पिण्डदानं च तत्र श्राद्धं च कारयेत् ॥१४॥

कृष्णपक्ष की अष्टमी, अमावास्या अथवा कृष्णपक्ष की एकादशी को उसे जल तथा पिण्ड-दान करना चाहिए और उसी दिन उसका श्राद्ध भी करना चाहिए ॥१४॥

आजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद् विनिःसृताः ।
न तेषामग्निसंस्कारो नाऽशौचं नोदकक्रिया ॥१५॥

जिसके दाँत न निकले हों, तथा जन्म लेते ही जो मर जायें ऐसे बालकों के मरणोपरान्त अग्नि-संस्कार, मरणाशौच तथा जलदानादि क्रिया नहीं होती है ॥१५॥

यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वाऽपि योषितः ।
यावन्मासस्थितो गर्भो दिनं तावत्तु सूतकम् ॥१६॥

यदि किसी स्त्री का गर्भपात अथवा गर्भ स्राव हो जाय तो जितने महीने पर गर्भपात अथवा स्राव हो उतने दिन ही उसे अशौच लगता है ॥१६॥

आचतुर्थाद् भवेत् स्रावः पातः पञ्चम-षष्ठयोः ।
इत ऊर्ध्वं प्रसूतिः स्याद् दशाहं सूतकं भवेत् ॥१७॥

चार महीने के भीतर यदि गर्भ गिरे तो उसे गर्भ-स्राव कहते हैं और यदि पाँच अथवा छः महीने तक गिरे तो उसे गर्भस्राव कहते हैं। इसके अनन्तर यदि गर्भ गिरे तो उसे प्रसूति कहते हैं, अतः प्रसूति में दश दिन का अशौच लगता है ॥१७॥

दन्तजातेऽनुजाते च कृतचूड़े च संस्थिते ।
अग्निसंस्करणे तेषां त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥१८॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बालक को दाँत आया हो अथवा न आया हो, यदि उसका चूड़ाकरण संस्कार हो गया हो, तो अग्नि-संस्कार कर देने पर तीन रात तक अशौच होता है ॥१८॥

आदन्तजन्मनः सद्यः अचूडान्नैशिकी स्मृता ।
त्रिरात्रमाव्रतादेशाद् दशरात्रमतः परम् ॥१९॥

अब उपर्युक्त स्थल में विशेषता कहते हैं—दाँत जमने तक बालक की मृत्यु हो तो सद्यःशौच-तत्क्षण अर्थात् स्नान-मात्र से शुद्धि, दाँत जमने के अनन्तर चूड़ाकरण होने तक मृत्यु हो जाने पर एक रात, तथा चूड़ाकरण के अनन्तर व्रतबन्ध होने तक तीन दिन का एवं व्रतबन्ध के अनन्तर मृत्यु हो जाने पर सपिण्ड को दश दिन का अशौच लगता है ॥१९॥

ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः ।
सम्पर्कं चेन्न कुर्वीत न तेषां सूतकं भवेत् ॥२०॥

जो ब्रह्मचारी हो अथवा जिसके घर में नित्य अग्निहोत्र होता हो वे यदि अशौचवालों से खाने-पीने तथा स्पर्श आदि का सम्बन्ध न रखें तो उन्हें अशौच नहीं लगता ॥२०॥

सम्पर्काद् दुष्यते विप्रो जनने मरणे तथा ।
सम्पर्केषु[1] निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२१॥

ब्राह्मण तभी दोष का भागी होता है जब वह जननाशौच अथवा मरणाशौच में सम्पर्क रखता है। यदि वह उपर्युक्त दोनों अवस्थाओं में अशौचवालों से सम्पर्क न रखे तो उसे जननाशौच अथवा मरणाशौच नहीं लगता ॥११॥

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासी-दासाश्च नापिताः ।
राजनः श्रोत्रियाश्चैव सद्यः शौचाः प्रकीर्तिताः ॥२२॥

---

१. सम्पर्काच्च' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिल्पी (चितेरा आदि), कारुक (रसोइया आदि), वैद्य, दासी, दास, नाई, राजा तथा श्रोत्रिय (वेद-पाठी) इन लोगों की स्नान करने से ही शुद्धि हो जाती है ॥२२॥

सव्रतः मन्त्रपूतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः ।
राज्ञश्च सूतकं नास्ति यस्य चेच्छति पार्थिवः ॥२३॥

कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतों को करनेवाले, यज्ञ में दीक्षा लेकर पवित्र हुए, अग्निहोत्र करनेवाले ब्राह्मण तथा राजाओं को अशौच नहीं लगता और राजा जिसे चाहे उसे भी अशौच नहीं लगता ॥२३॥

उद्यतो निधने दाने आर्तो विप्रो निमन्त्रितः ।
तदैव ऋषिभिर्दृष्टं यथाकालेन शुद्ध्यति ॥२४॥

संग्रामादि में मरने के लिए तैयार हुआ पुरुष, तथा दान देनेके लिए उद्यत, आर्त्त (रोगादि ग्रस्त) और श्राद्ध में निमन्त्रित व्यक्ति उतने काल के लिए शुद्ध हो जाता है, जितने काल तक उसका प्रयोजन है, फिर उसकी अपने धर्मानुसार तत्तत् दिनों में शुद्धि होती है ॥२४॥

प्रसवे गृहमेधी तु न कुर्यात् सङ्करं यदि ।
दशाहाच्छुध्यते माता त्ववगाह्य पिता शुचिः ॥२५॥

यदि गृहस्थ पुत्र आदि के जन्म होने पर प्रसूति का स्पर्श न करे तो पिता उसी क्षण स्नान कर शुद्ध हा जाता है (अर्थात् स्पर्श करने योग्य हो जाता है, परन्तु कर्म करने का अधिकारी नहीं रहता)। माता तो दश दिन के अनन्तर ही शुद्ध होती है। दश दिन के पहले स्पर्श के योग्य नहीं रहती ॥२५॥

सर्वेषां शावमाशौचं माता-पित्रोस्तु सूतकम् ।
सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥२६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मरणाशौच सपिण्ड मात्र को लगता है। परन्तु जननाशौच केवल माता तथा पिता को ही लगता है। उसमें पिता स्नान तथा आचमन करने से शुद्ध हो जाता है, किन्तु माता को दश दित तक जननाशौच होता है। (इसमें पिता को दश दित तक स्पर्श करने से दोष नहीं होता, यद्यपि वह कर्म-नित्य-नैमित्तिकादि का अधिकारी नहीं रहता) ॥२६॥

यदि पत्न्यां प्रसूतायां सम्पर्कं कुरुते द्विजः ।
सूतकं तु भवेत्तस्य यदि विप्रः षडङ्गवित् ॥२७॥

स्त्री के प्रसव काल में यदि ब्राह्मण प्रसूती स्त्री का स्पर्श आदि कर ले तो उसे दश दिन तक अशौच लगता ही है, चाहे वह षडंग (१. शिक्षा, २ कल्प, ३. निरुक्त, ४. व्याकरण, ५. छन्द, ६. ज्योतिष) वेद का ज्ञाता ही क्यों न हो ॥२७॥

सम्पर्काज्जायते दोषोनाऽन्यो दोषोऽस्ति वै द्विजे ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद् बुधः ॥२८॥

ब्राह्मण को सम्पर्क से ही दोष होता है, और कोई दूसरा दोष नहीं होता। इसलिए बुद्धिमान् ब्राह्मण को चाहिए कि प्रसूतिकाल में सर्वथा प्रसूति से सम्बन्ध न रखे ॥२८॥

विवाहोत्सव-यज्ञेषु त्वन्तरा मृतसूतके ।
पूर्वसंकल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति ॥२९॥

विवाह, उत्सव, (यज्ञोपवीत आदि) तथा यज्ञों के मध्य यदि जननाशौच अथवा मरणाशौच आ जाय, तो पूर्व में संकल्प किये गये द्रव्यों को देने में कोई दोष नहीं होता ॥२९॥

अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनि ।
तावत् स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्यादनिर्दशम् ॥३०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि दशाह अशौच के भीतर ही कोई दूसरा जननाशौच या मरणाशौच उपस्थित हो जाय, तो प्रथम अशौच के दश दिन के भीतर ही दूसरे अशौच की शुद्धि हो जाती है। परन्तु दूसरे मृतक की स्त्री तथा लड़के को दश दिन का अशौच रहता ही है ॥३०॥

ब्राह्मणार्थे विपन्नानां बन्दिगोग्रहणे तथा ।
आहवेषु विपन्नानामेकरात्रमशौचकम् ॥३१॥

ब्राह्मण की रक्षा के लिए मरनेवालों का, कसाई के हाथ में पड़ी हुई गौ के छुड़ाने के लिए मरनेवालों का तथा संग्राम-स्थल में मरनेवालों का एक दिन-रात अशौच लगता है ॥३१॥

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाऽभिमुखो हतः ॥३२॥

योगयुक्त (अर्थात् योगाभ्यास में लीन) संन्यासी तथा युद्ध में शत्रु के सम्मुख लड़कर मरनेवाला ये दोनों ही सूर्य-मण्डल को भेदकर सीधे स्वर्ग जाते हैं ॥३२॥

यत्र यत्र हतः शूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः ।
अक्षयान् लभते लोकान् यदि क्लीबं न भाषते ॥३३॥

शत्रुओं से घिरा हुआ वीर यदि कातर वचन न बोले और जिस-किसी भी स्थान पर शत्रु-सम्मुख लड़कर मर जाये, तो उसे अक्षय लोक मिलते हैं ॥३३॥

संन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति भास्करः ।
एष मे मण्डलं भित्त्वा परं स्थानं प्रयास्यति ॥३४॥

संन्यस्त ब्राह्मण को देखकर सूर्य काँप उठते हैं कि यह मेरे मण्डल का भेदकर ब्रह्मलोक को जायेगा ॥३४॥

यस्तु भग्नेषु सैन्येषु विद्रवत्सु समन्ततः ।
परित्राता यदा गच्छेत् स च क्रतुफलं लभेत् ॥३५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेनाओं के इधर-उधर भागने पर जो वीर उसको रक्षा के लिए शत्रु के सन्मुख होता है, उसे यज्ञ करने का फल होता है ॥ ३५ ॥

यस्य छेदक्षतं गात्रं शर-मुद्गर-यष्टिभिः ।
देवकन्यास्तु तं वारं हरन्ति रमयन्ति च ॥३६॥

जिस वीर पुरुष का शरीर बाण, मुद्गर तथा लाठियों की चोट से क्षत-विक्षत हो जाता है, उस वीर पुरुष को देव-कन्याएँ अपने स्थान में ले जाती हैं और उससे रमण करता हैं ॥ ३६ ॥

देवाङ्गना-सहस्राणि शूरमायोधने हतम् ।
त्वरमाणाः प्रधावन्ति 'मम भर्त्ता ममेति' च ॥३७॥

युद्ध में शत्रु-सन्मुख लड़कर मरनेवाले वीरों को हजारों देवांगनाएँ यह कहती उसके निकट दौड़ती हुई आती हैं कि 'यह मेरा पति है', 'यह मेरा पति है' ॥ ३७ ॥

ये यज्ञसङ्घस्तपसा च विप्राः स्वर्गैषिणो यत्र यथैव यान्ति ।
क्षणेन यान्त्येव हि तत्र वीराः प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः[1] ।३८।

स्वर्गादि उत्तम लोक की इच्छा रखनेवाले ब्राह्मण अनेक यज्ञ तथा तपस्या से जिस भाँति जिस लोक को प्राप्त करते हैं, धर्मपूर्वक युद्ध कर प्राण को त्यागनेवाले वीर उन-उन लोकों को उसी प्रकार क्षणभर में प्राप्त कर लेते हैं ॥ ३८ ॥

जितेन लभ्यते लक्ष्मीर्मृतेनाऽपि सुराङ्गना ।
क्षणध्वंसिनी कायेऽस्मिन् का चिंता मरणे रण ? ॥३९॥

वीरों को विजय होने पर लक्ष्मी प्राप्त होती हे और मर जाने पर अप्सराओं की प्राप्ति होती है। इसलिए वे क्षणभंगुर इस शरीर की चिन्ता क्यों करें ? ॥ ३९ ॥

---

१. 'परित्यजन्ति' इत्यपि पाठः ।

३

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च यस्याहवे तु प्रविशेच्च वक्त्रम् ।
तत्सोमपानेन किलास्य तुल्यं संग्रामयज्ञ विधिवच्च दृष्टम् ॥४०॥

जिस पुरुष के संग्राम-यज्ञ में शत्रुओं से चोट लगने पर ललाटदेश से गिरता हुआ रुधिर उसके मुख में प्रवेश करता है, वह विधिवत् सोम-पान के तुल्य होता है ॥ ४० ॥

अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः ।
पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्व्याल्लभन्ति ते ॥४१॥

जो द्विजाति, अनाथ मरे हुए ब्राह्मण को उठाकर दाह करने के लिए ल जाते हैं, वे पग-पग पर अपूर्व यज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं ॥ ४१ ॥

न तेषामशुभं किञ्चित् पापं वा शुभकर्मणाम् ।
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधायते ॥४२॥

ऐसे पुण्य कर्म करनेवालों को कोई अशौच आदि पाप नहीं लगते । वे स्नान करके उसी क्षण शुद्ध हो जाते हैं ॥ ४२ ॥

असगोत्रमबन्धुं च प्रेतीभूतं द्विजोत्तमम् ।
वहित्वा दाहयित्वा[1] च प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥४३॥

जो ब्राह्मण अपना सगोत्र अथवा बन्धु नहीं है उसके मर जाने पर श्मशान में ले जाकर दाह करनेवालों को एक प्राणायाम से शुद्धि होती है ॥ ४३ ॥

अनुगम्येच्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा ।
स्नात्वा सचैलं स्पृष्ट्वाऽग्निं घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥४४॥

---

१. 'दहित्वा' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अपनी इच्छा से जाति अथवा परजाति के मुरदे के पीछे जानेवाले को वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए। पश्चात् अग्नि का स्पर्श कर, उस दिन केवल घी चाटकर रहे तब उसकी शुद्धि होती है ॥४४॥

क्षत्रियं मृतमज्ञानाद् ब्राह्मणो योऽनुगच्छति ।
एकाहमशुचिर्भूत्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥४५॥

जो ब्राह्मण अज्ञान से किसी मरे हुए क्षत्रिय के पीछे दाह के लिए जाता है, उसे एक दिन-रात का अशौच लगता है। फिर दूसरे दिन पंचगव्य पान करने से उसकी शुद्धि होती है ॥ ४५ ॥

शवं [1]तद्वैश्यमज्ञानाद् ब्राह्मणो [2]योऽनुगच्छति ।
कृत्वाऽशौचं द्विरात्रं च प्राणायामान् षडाचरेत् ॥४६॥

जो ब्राह्मण अज्ञान से किसी मरे हुए वैश्य के पीछे जाता है उसे दो दिन का अशौच लगता है, तदनन्तर तीसरे दिन छः प्राणायाम से उसकी शुद्धि होती है ॥ ४६ ॥

प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
अनुगच्छेन्नीयमानं त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥४७॥

जो ब्राह्मण अज्ञान-वश किसी मरे हुए शूद्र के पीछे जाता है उसे तीन दिन-रात का अशौच लगता है ॥ ४७ ॥

त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥४८॥

तीन दिन-रात बीतने के पश्चात्‌ किसी समुद्रगामिनी (समुद्र में जाकर मिलनेवाली) नदी में जाकर स्नान करे और सौ प्राणायाम करने के उपरान्त घी का भोजन करे तो उसकी शुद्धि होती है ॥४८॥

---

१. 'च' इत्यपि पा० । २. 'ह्य' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः ।
द्विजैस्तदानुगन्तव्या एष धर्मः सनातनः ॥४९॥

जब शूद्र लोग दाह कर प्रेत को जलांजलि दे घर लौट आवें तब ब्राह्मणादि वर्णों को उनके घर जाना चाहिए, यह सनातन धर्म है ॥ ४९ ॥

तस्माद् द्विजो मृतं शूद्रं न स्पृशेन्न च दाहयेत् ।
दृष्टे सूर्यावलोकेन शुद्धिरेषा पुरातनी ॥५०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे जनन-मरण-सूतकादिशुद्धिर्नाम
तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इसलिए ब्राह्मण किसी मरे हुए शूद्र का न तो स्पर्श करें और न उसे जलावें। यदि कदाचित् देख भी लें तो भगवान् सूर्य के दर्शन कर लेने से शुद्ध हो जाते हैं। यही प्राचीन परिपाटी है ॥ ५० ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका में पाराशरीय धर्मशास्त्र में जनन-मरण-सूतकादि शुद्धि नामक तृतीय अध्याय समाप्त ॥ ३ ॥

४. चतुर्थोऽध्यायः

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद् वा यदि वा भयात् ।
उद्बध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेषा विधीयते ॥ १ ॥

यदि कोई स्त्री अथवा पुरुष अत्यन्त मान से, क्रोध से, स्नेह से अथवा अत्यन्त भय से फाँसी लगाकर या आग में जलकर, जल में डूबकर, पर्वतादि से गिरकर आत्महत्या कर ले तो उसकी गति इस प्रकार होती है ॥ १ ॥

पूय-शोणित-सम्पूर्णे त्वन्धे तमसि मज्जति ।
षष्टिवर्ष-सहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते ॥ २ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वह पीब और रक्त से भरे हुए अन्धतामिस्र नामक नरक में साठ हजार वर्ष तक पड़ा रहता है ॥ २ ॥

नाऽशौचं नोदकं नाऽग्निं नाऽश्रुपातं च कारयेत् ।
वोढारोऽग्निप्रदातारः पाशच्छेदकरास्तथा ॥ ३ ॥

इस प्रकार मरनेवाले पुरुष के लिए अशौच, जलदान तथा दाहादि कर्म न करे, उनके लिए रोवे भी नहीं। जो लोग उन्हें उठाकर श्मशान में दाह करते हैं, उनका बन्धन काटते हैं ॥ ३ ॥

तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ।
गोभिर्हतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातितम् ॥ ४ ॥

वे तप्तकृच्छ्र व्रत से शुद्ध होते हैं। जो गौ से मारा गया हो, फाँसी लगाकर मरा हो अथवा ब्राह्मणों ने जिनको मार डाला हो ॥ ४ ॥

सम्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाऽग्निदाश्च ये ।
अन्ये ये चाऽनुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये ॥ ५ ॥

उस मरे हुए को जो लोग स्पर्श करते हैं, श्मशान पर ले जाकर दाह करते हैं अथवा उसके पीछे-पीछे जाते हैं या उसकी फाँसी काटते हैं ॥ ५ ॥

तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते कुर्युर्ब्राह्मणभोजनम् ।
अनडुत्सहितां गां च दद्युर्विप्राय दक्षिणाम् ॥ ६ ॥

वे तप्तकृच्छ्र व्रत-द्वारा शुद्ध होकर ब्राह्मण भोजन करावें और गाय, बैल के १ जोड़े दक्षिणा में दान करें ॥ ६ ॥

त्र्यहमुष्णं पिबेद् वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् ।
त्र्यहमुष्णं पिबेत् सर्पिर्वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥ ७ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तप्तकृच्छ्र व्रत की विधि इस प्रकार है—व्रत करनेवाला पुरुष तीन दिन तक उष्ण जल पीवे, पश्चात् तीन दिन गरम दूध पीवे, फिर तीन दिन तक घी पीवे और उसके बाद तीन दिन तक कुछ न खाये। इस प्रकार १२ दिन का एक तप्तकृच्छ्र होता है ॥ ७ ॥

षट्पलं तु पिबेदम्भस्त्रिपलं तु पयः पिबेत् ।
पलमेकं पिबेत् सर्पिस्तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥ ८ ॥

उपर्युक्त व्रत में विहित जलादि का परिमाण इस प्रकार है—छः पल (२४ तोले) जल प्रतिदिन, तीन पल (१२ तोले) दूध प्रतिदिन, एक पल (४ तोले) घी प्रतिदिन पीवे। यही तप्तकृच्छ्र व्रत में पीये जानेवाले जल, दूध तथा घी का परिमाण है ॥ ८ ॥

यो वै समाचरेद् विप्रः पतितादिष्वकामतः ।
पञ्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण अनिच्छा से पतितों के साथ पाँच, दश अथवा बारह दिन तक निवास करे ॥ ९ ॥

मासार्द्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापि वा ।
अब्दार्द्धमब्दमेकं वा [1]तदूर्ध्वं चैव तत्समः ॥१०॥

अथवा पतितों के साथ पन्द्रह दिन, एक महीना, दो महीना, छः महीना वा एक वर्ष निवास करे, तो उसे वक्ष्यमाण (आगे कहे गये) प्रायश्चित्त करना चाहिए। एक वर्ष के बाद अनिच्छा से भी पतित संसर्ग करने पर वह उन्हीं के तुल्य हो जाता है। (उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं है) ॥ १० ॥

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्रमाचरेत् ।
तृतीये चैव पक्षे तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥११॥

१, 'भवेदूर्ध्वं हि तत्समः' इति क्वचित्पुस्तके ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त आठ प्रकार के प्रायश्चित्तों को विधि इस प्रकार है— प्रथम पाँच दिन अनिच्छा से पतित का संसर्ग होने पर त्रिरात्र, दूसरे दश दिन का साथ होने पर कृच्छ्, तीसरे बारह दिन ससर्ग होने पर कृच्छ्रसान्तपन, ॥ ११ ॥

चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पराकः पञ्चमे मतः ।
कुर्याच्चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्दव-द्वयम् ॥१२॥

चौथे पन्द्रह दिन का संसर्ग होने पर दश रात्र, पाँचवें एक महीने संसर्ग होने पर पराक व्रत, छठे दो महीने संसर्ग होने पर चान्द्रायण, सातवें छः महीने के संसर्ग होने में दो चान्द्रायण ॥ १२ ॥

शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव षण्मासान् कृच्छ्रमाचरेत् ।
पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥१३॥

तथा आठवें एक वर्ष तक संसर्ग होने पर छः महीने तक कृच्छ्रव्रत करना चाहिए और जितने पक्ष पतितों के साथ रहे, व्रतोपरान्त उतने-उतने मुहर की दक्षिणा देवे ॥ १३ ॥

ऋतुस्नाता तु या नारी भर्त्तारं नोपसर्पति ।
सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥१४॥

रजस्वला होने के उपरान्त चौथे दिन स्नान कर लेने के बाद जो स्त्री अपने पति के पास नहीं जाती, वह मरकर नरक में जाती है और मृत्युलोक में आने पर बारम्बार विधवा होती है ॥ १४ ॥

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति ।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नाऽत्र संशयः ॥१५॥

जो पुरुष ऋतु-काल के अनन्तर चौथे दिन स्नान कर शुद्ध हुई अपनी स्त्री के पास नहीं जाता, उसे भ्रूण हत्या का पाप लगता है, इसमें संशय नहीं ॥ १५ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दरिद्रं व्याधितं धूर्तं[1] भर्तारं याऽवमन्यते ।
सा शुनी जायते मृत्वा सूकरी च पुनः पुनः ॥१६॥

जो स्त्री अपने दरिद्र, रोगी अथवा धूर्त्त पति का अपमान करती हैं, वह मरने के अनन्तर बारम्बार कुतिया या शूकरी होती है ॥ १६ ॥

पत्यौ जीवति या नारी उपोष्य व्रतमाचरेत् ।
आयुष्यं हरते भर्त्तुः सा नारी नरकं व्रजेत् ॥१७॥

जो स्त्री अपने पति के जीवित रहने प. (उसकी आज्ञा के बिना) व्रत अथवा उपवास करती है वह अपने पति को अल्पायु बनाती है तथा मरकर स्वयं भी नरक में जाती है ॥ १७ ॥

अपृष्ट्वा चैव भर्त्तारं या नारी कुरुते व्रतम् ।
सर्वं तद्राक्षसान् गच्छेदित्येवं मनुरब्रवीत् ॥१८॥

मनु का तो मत है कि जो स्त्री अपने पति की अनुमति के बिना ही व्रत का आचरण करती है उसे उस व्रत का फल न मिलकर राक्षसों को प्राप्त होता है ॥१८॥

बान्धवानां सजातीनां दुर्वृत्तं कुरुते तु या ।
गर्भपातं च या कुर्यान्न तां सम्भाषयेत् क्वचित् ॥१९॥

जो स्त्री अपने कुटुम्ब तथा सजातियों को अपने दुराचरण से हानि पहुँचावे अथवा गर्भपात करे, ऐसी स्त्री से किसी काल में भी संभाषणादि न करे ॥१९॥

यत्पापं ब्रह्महत्यायां द्विगुणं गर्भपातने ।
प्रायश्चित्तं न तस्याः [2]स्यात्तस्यास्त्यागो विधीयते ॥२०॥

---

१. 'मूर्ख' इत्यपि पाठः । २. 'तस्याऽस्ति' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्रह्महत्या में जितना पाप लगता है उसका दूना पाप गर्भ के गिराने से होता है, अत: उसका कोई प्रायश्चित्त नहीं है। इसलिए ऐसी स्त्री को त्याग देना ही श्रेयस्कर है ॥२०॥

न कार्यमावसथ्येन नाऽग्निहोत्रेण वा पुनः।
स भवेत् कर्मचाण्डालो यस्तु धर्मपराङ्मुखः ॥२१॥

जो पुरुष धर्म से विमुख है उसके आवसथ्य (स्नाताग्नि) और अग्निहोत्र करने से कोई फल नहीं होता। वह तो कर्म से चाण्डाल कहा जाता है ॥२१॥

[1]ओघ-वाताऽऽहृतं बीजं यस्य क्षेत्रे प्ररोहति।
[2]क्षेत्री तल्लभते बीजं न बीजी भागमर्हति ॥२२॥

जिस प्रकार जल और वायु के वेग से किसी का बीज दूसरे के क्षेत्र में उत्पन्न हो तो उस बीज का मालिक खेत का स्वामी होता है, बीज का मालिक नहीं ॥२२॥

तद्वत् परस्त्रियाः[3] पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्ड गोलकौ।
पत्यौ जीवति कुण्डः स्यात् मृते भर्तरि गोलकः ॥२३॥

उसी प्रकार दूसरे की स्त्री में दूसरे से उत्पन्न हुआ पुत्र उस स्त्री के स्वामी का ही होता है, उपपति का नहीं। इस प्रकार दूसरे के क्षेत्र में उपपति से उत्पन्न किये गये पुत्र के भी दो भेद हैं। प्रथम कुण्ड तथा दूसरा गोलक। पति के जीते-जी उपपति के द्वारा स्त्री में उत्पन्न पुत्र 'कुण्ड' कहा जाता है और पति के मरने पर उपपति से उत्पन्न पुत्र 'गोलक' कहा जाता है ॥२३॥

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः।
दद्यान्माता पिता वाऽपि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥२४॥

---

१. 'अम्बु इति। २. 'स क्षेत्री लभते' इति। ३. स्त्रियः' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार पुत्र तीन प्रकार के होते हैं : १ औरस (अपनी सजातीय भार्या में स्वपति से उत्पन्न), २ क्षेत्रज (दूसरे की स्त्री में उपपति से उत्पन्न हुआ पुत्र) तथा ३. दत्तक पुत्र, जिसे कृत्रिम भी कहते हैं। जिसे माता-पिता अपनी इच्छा से दे दें वह उसका दत्तक (कृत्रिम) पुत्र हो जाता है ॥२४॥

परिवित्तिः परिवेत्ता मया च परिविद्यते ।
सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपञ्चमाः ॥२५॥

१. परिवित्ति, २. परिवेत्ता, ३. परिवेत्ता से ब्याही गयी कन्या, ४. परिवेत्ता को कन्यादान करनेवाला दाता तथा ५. परिवेत्ता से कन्या का विवाह करनेवाला ब्राह्मण ये पाँचों नरक में जाते हैं। (बड़े भाई के रहते हुए जिसने अपना विवाह कर लिया वह 'परिवेत्ता' तथा उसका बड़ा भाई 'परिवित्ति' कहा जाता है) ॥२५॥

द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु कन्यायाः कृच्छ्र एव च ।
कृच्छ्राऽतिकृच्छ्रौ दातुस्तु होता चान्द्रायणं चरेत् ।२६॥

'परिवित्ति' को दो कृच्छ्र व्रत करना चाहिए। कन्या को एक कृच्छ्र व्रत, दाता को कृच्छ्र तथा अतिकृच्छ्र व्रत तथा विवाह करानेवाले को 'चान्द्रायण' व्रत करना चाहिए। ऐसा करने से उन्हें पाप नहीं लगता ॥२६॥

कुब्ज-वामन-षण्ढेषु गद्गदेषु जडेषु च ।
जात्यन्धे बधिरे मूके न दोषः परिवेदने[1] ॥२७॥

यदि जेठा भाई लँगड़ा, वामन, नपुंसक, तोतला बोलनेवाला, जड़, जन्मान्ध, बधिर तथा गूँगा हो और उस अवस्था में छोटा भाई व्याह कर ले तो वह 'परिवेत्ता' नहीं कहा जाता ॥२७॥

---

१. 'परिविन्दतः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पितृव्यपुत्रः सापत्नः परनारीसुतस्तथा।
दाराऽग्निहोत्र-संयोगे न दोषः परिवेदने ॥२८॥

चचेरा भाई, सौतेला भाई तथा पर स्त्री से उत्पन्न हुआ (दत्तक आदि) सुतों को जेठे भाई के रहते, दारसंयोग (ब्याह) अथवा अग्निहोत्र कर लेने में कोई पाप नहीं लगता ॥२८॥

ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव कारयेत् ।
अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शंखस्य वचनं यथा ॥२९॥

बड़े भाई के रहते छोटा भाई अग्निहोत्र कार्य न करे। किन्तु शंख के वचनानुसार बड़े भाई की आज्ञा से छोटा भाई अग्निहोत्र कर सकता है, इसमें कोई दोष नहीं होता ॥२९॥

नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे च पतिते पतौ ।
पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥३०॥

यदि कन्या का वाग्दान हो जाने पर पति १. नष्ट, २. मृत, ३. संन्यासी, ४. क्लीब (नपुंसक) तथा ५. पतित ज्ञात हो जाय तो इन पाँच आपत्तियों में कन्या का दूसरा विवाह कर देना चाहिए। (यहाँ 'पतितेऽपतौ' में 'अपतौ' ऐसा खण्ड है जो 'पतिः समास एव' से घि संज्ञा, तथा 'अच्च घेः' सूत्र से ङि को 'औ' तथा घि को अत् हो गया है, 'न पतिः अपतिस्तस्मिन्नपतौ' ऐसा विग्रह करना चाहिए। जिसका अर्थ है—'ईषत् पतौ' क्योंकि नञ् का ईषत् अर्थ होता है। जैसे 'अनुदरा कन्या' अर्थात् वाग्दानानन्तरं सप्तपदाक्रमणात् पूर्वम्) अन्यथा वक्षमाण ३१वें श्लोक से विरोध होगा ॥३०॥

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्यव्रते स्थिता ।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥३१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जो स्त्री अपने पति के मर जाने पर ब्रह्मचर्य का पालन करती हुई अपने दिन को बिताती है वह मरने पर ब्रह्मचारियों की भाँति स्वर्ग को जाती है ॥३१॥

तिस्रः कोटयोऽर्द्धकोटी च यानि लोमानि मानुषे ।
तावत्कालं वसेत् स्वर्गे भर्तारं याऽनुगच्छति ॥३२॥

जो स्त्री अपने पति के मर जाने पर उसके साथ ही प्राण त्यागकर पातिव्रत्य धर्म का पालन करती है वह मनुष्य शरीर में रहनेवाले साढ़े तीन करोड़ रोयें के बराबर उतने ही वर्ष तक स्वर्ग में वास करती है ॥३२॥

व्यालग्राही यथा व्यालं बलादुद्धरते बिलात् ।
एवं स्त्री पतिमुद्धृत्य तेनैव सह मोदते ॥३३॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे उद्बन्धनादिमृतशुद्धिर्नाम
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

जिस प्रकार सपेरा साँप को उसके बिल से बलात् निकाल लेता है उसी प्रकार पतिव्रता स्त्री भी अपने तप के प्रभाव से लोकान्तर में गये हुए अपने पति को खोजकर उसके साथ विहार करती है ॥३३॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषाटीका में, पाराशरीय धर्मशास्त्र में उद्बन्धनादिमृतशुद्धि नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥ ४ ॥

●

५. पञ्चमोऽध्यायः

वृक-श्वान-शृगालाद्यैर्दष्टो यस्तु द्विजोत्तमः ।
स्नात्वा जपेत् स गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम् ॥ १ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस ब्राह्मण को भेड़िया, कुत्ता अथवा शृगाल आदि नीच जानवरों ने काट खाया हो, तो वह स्नान कर वेदमाता गायत्री का जप करे ॥ १ ॥

गवां शृङ्गोदकैः स्नानं महानद्योस्तु सङ्गमे ।
समुद्रदर्शनाद् वाऽपि शुना दष्टः शुचिर्भवेत् ॥ २ ॥

अब विशेष कहते हैं कि जिस ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो वह गौ के शृङ्ग (सींग) के जल से स्नान करे अथवा समुद्रगामिनी दो महानदियों के संगम में स्नान करे या समुद्र का दर्शन करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥ २ ॥

वेद-विद्या-व्रतस्नातः शुना दष्टो द्विजो यदि ।
स हिरण्योदकैः स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥ ३ ॥

यदि किसी वेदज्ञ अथवा चतुर्दश-विद्यासम्पन्न अथवा उत्तम व्रत करनेवाले किसी ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो, तो वह सोने को धोकर, उस पानी से स्नान करे, पश्चात् घी का भोजन करने से उसकी शुद्धि होती है ॥ ३ ॥

सव्रतस्तु शुना दष्टो यस्त्रिरात्रमुपावसेत् ।
घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत् ॥ ४ ॥

व्रत की अवस्था में यदि किसी ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो, तो वह तीन दिन-रात उपवास करे और फिर घी तथा कुशा का जल पीकर व्रत के शेष दिनों को पूरा करे ॥ ४ ॥

अव्रतः सव्रती वाऽपि शुना दष्टो भवेद् द्विजः ।
प्रणिपत्य भवेत् पूतो विप्रैश्चक्षुर्निरीक्षितः ॥ ५ ॥

ब्राह्मण चाहे किसी व्रत में हो अथवा न हो, यदि उसे कुत्ते ने काट लिया हो तो वह ब्राह्मणों को दण्डवत् करे। यदि ब्राह्मण उसे आँखभर देख लें तो वह शुद्ध हो जाता है ॥ ५ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शुना घ्राताऽवलीढस्य नखैर्विलिखितस्य च ।
अद्भिः प्रक्षालनाच्छुद्धिरग्निना चोपचूलनम् ॥ ६ ॥

जिस वस्तु को कुत्ते ने सूँघ अथवा चाट लिया हो अथवा अपने नाखूनों से खसाट लिया हो, उस वस्तु की शुद्धि जल से धोकर आग में तपा देने से हो जाती है ॥ ६ ॥

शुना तु ब्राह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा ।
उदितं [1]सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत् ॥ ७ ॥

जिस ब्राह्मणी को कुत्ते, गीदड़ अथवा भेड़िये ने काट लिया हो वह उसी समय उदय होनेवाले चन्द्रमा सहित ताराओं को देखकर शुद्ध हो जाती है ॥ ७ ॥

कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन ।
यां दिशं व्रजते सोमस्तां दिशं वाऽवलोकयेत् ॥ ८ ॥

यदि कदाचित् कृष्णपक्ष के होने से चन्द्रमा दिखाई न दें तो जिस दिशा में चन्द्रमा जानेवाले हों उस दिशा को ही देख ले। चन्द्रमा की दिशा गति इस प्रकार है—मेष[2], सिंह और धनु राशि में पूर्व दिशा में, वृष, कन्या, मकर राशि में दक्षिण दिशा में, मिथुन, तुला, कुम्भ में पश्चिम दिशा में, कर्क, वृश्चिक तथा मीन में उत्तर दिशा में चन्द्रमा रहते हैं ॥ ८ ॥

असद्ब्राह्मणके ग्रामे शुना दष्टो द्विजोत्तमः ।
वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नात्वा शुचिर्भवेत् ॥ ९ ॥

---

१. 'ग्रह–' इति ।

२. मेषे च सिंहे धन पूर्वभागे वृषे च कन्या मकरे तु याम्याम् ।
मिथुने तुले कुम्भतु पश्चिमायां कर्काऽलि-मीने दिशि चोत्तरस्याम् ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि किसी ऐसे गाँव में ब्राह्मण को कुत्ते ने काट लिया हो, जिसमें एक भी ब्राह्मण न हो तो वह बैल की प्रदक्षिणा कर स्नान कर लेवे। इतने से ही वह शुद्ध हो जाता है॥ ९ ॥

चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिर्विप्रैर्हतो यदि ।
अहिताग्निर्मृतो विप्रो विषेणात्महतो यदि ॥१०॥

यदि कोई अग्निहोत्री, चाण्डाल (ब्राह्मणी में शूद्र से उत्पन्न), श्वपाक (क्षत्राणी में शूद्र से उत्पन्न), गौ अथवा ब्राह्मण के मारने से मर गया हो अथवा स्वयं विष खाकर आत्महत्या कर ले, तो ॥१०॥

दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ।
स्पृष्ट्वा वोढ्वा च दग्ध्वा च सपिण्डेषु च सर्वथा ॥११॥

उस अग्निहोत्री ब्राह्मण को उसका कोई सपिण्डी ब्राह्मण बिना मन्त्र पढ़े ही लौकिक अग्नि में जला देवे और उसके स्पर्श, श्मशान तक वहन तथा दाह करने के पाप के निमित्त, ॥११॥

प्रजापत्यं चरेत् पश्चाद् विप्राणामनुशासनात् ।
दग्ध्वाऽस्थीनि पुनर्गृह्य क्षीरैः प्रक्षालयेत् द्विजः ॥१२॥

ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर प्राजापत्य व्रत करे। फिर वह ब्राह्मण उसकी हड्डियों का पुनः दाह कर उसे दूध से धोवे ॥१२॥

स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण पृथगेतत् पुनर्दहेत् ।
आहिताग्निर्द्विजः कश्चित् प्रवसन् कालचोदितः ॥१३॥

पुनः उसे अलग किसी स्थान पर अग्निहोत्र की अग्नि से मन्त्रपूर्वक जलावे (पश्चात् उसकी क्रिया करे)। यदि कोई अग्निहोत्री ब्राह्मण दुर्दैव से परदेश में जाकर, ॥१३॥

देहनाशमनुप्राप्तस्तस्याऽग्निर्वर्तते गृहे ।
प्रेताऽग्निहोत्र-संस्कारः[1] श्रूयतामृषिपुङ्गवाः ॥१४॥

---

१. 'श्रोताग्निहोत्रसंस्कारः इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मर जाय और उसकी अग्नि उसके घर में हो, तो हे ऋषियो! उसके अग्निहोत्र संस्कार को आप लोग सुनें ॥१४॥

कृष्णाजिनं समास्तीर्य कुशैस्तु पुरुषाकृतिम् ।
षट्शतानि शतं चैव पलाशानां च वृन्ततः ॥१५॥

काले मृग का चर्म फैलाकर, उसपर कुशा से पुरुष की आकृति बनावे। कुश न मिले तो ७०० पलाश के पत्तों को लेकर, ॥१५॥

चत्वारिंशच्छिरे दद्याच्छतं कण्ठे तु विन्यसेत् ।
बाहुभ्यां दशकं दद्यादङ्गुलीषु दशैव तु ॥१६॥

शिर में ४० पत्ते, गला में १०० पत्ते, बाहु में १० पत्ते, हाथ की अँगुलियों में १० पत्ते, ॥१६॥

शतं तु जघने दद्यात् द्विशतं तूदरे तथा ।
दद्यादष्टौ वृषणयोः पञ्च मेढ्रे तु विन्यसेत् ॥१७॥

जाँघ में १०० पत्ते, उदर में २०० पत्ते, अण्डकोश में ८ पत्ते, लिंग में ५ पत्ते, ॥१७॥

एकविंशतिमूरुभ्यां द्विशतं जानु-जंघयोः ।
पादाङ्गुलीषु[1] षड् दद्यात् यज्ञपात्रं ततो न्यसेत् ॥१८॥

ऊरु में २१ पत्ते, जानु तथा जंघा में २०० पत्ते तथा पैर की अँगुलियों में ६ पत्ते देवे। तदनन्तर यज्ञपात्रों को रखे ॥१८॥

शम्यां शिश्ने विनिःक्षिप्य अरणी मुष्कयोरपि ।
जुहूं च दक्षिणे हस्ते वामे तूपभृतं न्यसेत् ॥१९॥

---

१. 'पादाङ्गुष्ठेषु' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञ के पात्रों के रखने का प्रकार ऐसा है—शमी को लिंग पर, अरणी को अण्डकोश पर, जुहू (स्रुआ) को दाहिने हाथ पर, उपभृत् को बाँयें हाथ पर, ॥१९॥

कर्णे चोलूखलं दद्यात् पृष्ठे च मुशलं न्यसेत् ।
उरसि क्षिप्य दृषदं तण्डुलाऽऽज्य-तिलान् मुखे ॥२०॥

ऊलूखल को कान पर, मुसल को पीठ पर, दृषत् को छाती पर, चावल, घी तथा तिल को मुख में देवे ॥२०॥

श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीं तु चक्षुषोः ।
कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलं क्षिपेत्[1] ॥२१॥

प्रोक्षणीपात्र कान पर, आज्यस्थाली आँखों पर तथा कान, आँख, नाक एवं मुँह में सुवर्ण का टुकड़ा देवे ॥२१॥

अग्निहोत्रोपकरणमशेषं तत्र विन्यसेत् ।
'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहे' त्येकाहुतिं सकृत् ॥२२॥

इस प्रकार उसके अग्निहोत्र का सारा उपकरण रखकर 'असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा' ऐसा कहकर एक आहुति देवे ॥२२॥

दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राताऽप्यन्यो वाऽपि च बान्धवः ।
यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्यं विचक्षणैः ॥२३॥

इस प्रकार उस अग्निहोत्री का पुत्र, भाई अथवा दूसरा कोई सजातीय बान्धव आहुति देकर विज्ञ लोग विधानतः उसका दाह-संस्कार करें ॥२३॥

ईदृशं तु विधिं कुर्याद् ब्रह्मलोके गतिर्ध्रुवम्[2] ।
दहन्ति ये द्विजास्तं तु ते यान्ति परमां गतिम् ॥२४॥

---

१. 'न्यसेत्' इति । २. 'गतिः स्मृता' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उपर्युक्त प्रकार की विधि करने से उस अग्निहोत्री को निश्चय ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है और जो ब्राह्मण इस प्रकार दाहसंस्कार करते हैं वे भी उत्तम लोक को प्राप्त करते हैं ॥२४॥

अन्यथा कुर्वते कर्म त्वात्मबुद्ध्या प्रचोदिताः ।
भवन्त्यल्पायुषस्ते वै पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥२५॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

जो लोग अपनी बुद्धि की कल्पना से अन्यथा (विपरीत) काम करते हैं वे अल्पायु होकर अत्यन्त अपवित्र नरक में गिरते हैं ॥२५॥

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका में पाराशरीय धर्मशास्त्र में पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५ ॥

६. षष्ठोऽध्यायः

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम् ।
पराशरेण पूर्वोक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्तृताम् ॥ १ ॥

अशौच प्रकरण के अनन्तर अब मैं प्राणिहत्या का प्रायश्चित्त कहता हूँ, जिसे महर्षि पराशर ने पहले ही कहा है तथा मन्वादि स्मृतियों में भी विस्तारपूर्वक वर्णित है ॥१॥

क्रौञ्च-सारस-हंसांश्च चक्रवाकं च कुक्कुटम् ।
जालपादं च शरभं हत्वाऽहोरात्रतः शुचिः ॥ २ ॥

क्रौंच, सारस, हंस, चक्रवाक, मुर्ग, बत्तक तथा शरभ इनमें से किसी की हत्या करने से पुरुष एक दिन-रात का उपवास कर शुद्ध होता है ॥२॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

बलाका-टिट्टिभौ वाऽपि शुक-पारावतावपि ।
अटीन-बकघाती च शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ३ ॥

बलाका, टिट्टिभ, तोता, पारावत (पनडुब्बी पक्षी), अटीन तथा बकुले को मारकर दिन में उपवास कर रात में भोजन करे तो शुद्धि होती है ॥३॥

वृक-काक कपोतानां शारी तित्तिरघातकः ।
अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुद्ध्यति ॥ ४ ॥

वृक (भेड़िया) कौवा, कबूतर, मैना तथा तित्तिर को मारकर जल के बीच सायंकाल एवं प्रातःकाल प्राणायाम करे तो शुद्धि होती है ॥४॥

गृध्र श्येन शशादीनामुलूकस्य च घातकः ।
अपक्वाशी दिनं तिष्ठेत् त्रिकालं मारुताशनः ॥ ५ ॥

गिद्ध, बाज, खरगोश और उल्लू को मारने से पहले दिन बिना पका हुआ तथा दूसरे दिन तीसरे पहर भोजन कर, तीसरे दिन उपवास रहने से शुद्धि होती है ।५॥

वल्गुली टिट्टिभानां च कोकिला खञ्जरीटके ।
लाविका रक्तपक्षेषु शुद्ध्यते नक्तभोजनात् ॥ ६ ॥

बल्गुली, टिट्टिभ, कोयल, खिरहिच, बटेर तथा जिनके पंख लाल हों इस प्रकार के पक्षियों को मारकर दिन में उपवास करे, पश्चात् रात्रि में भोजन करे तो शुद्धि होती है ॥६॥

कारण्डव चकोराणां पिङ्गला कुररस्य च ।
भारद्वाजादिकं हत्वा शिवं सम्पूज्य शुद्ध्यति ॥ ७ ॥

कारण्डव, चकोर, पिंगला, कुरर तथा भारद्वाज आदि पक्षियों को मारे तो भगवान् शंकर की पूजा कर शुद्ध होता है ॥७॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भेरुण्ड चाष भासांश्च पारावत कपिञ्जलान्[1] ।
पक्षिणां चैव सर्वेषामहोरात्रमभोजनम् ॥ ८ ॥

भेरुण्ड, चाष (नीलकण्ठ या गरुड़), भास, पारावत और कपिजल (पपीहा) आदि पक्षियों को मारने से एक दिन-रात भोजन न करे तो शुद्धि होती है ॥८॥

हत्वा मूषक-मार्जार-सर्पा-ऽजगर-डुण्डुभान् ।
कृसरं भोजयेद् विप्रान् लौहदण्डं च दक्षिणाम् ॥ ९ ॥

चूहा, बिल्ली, साँप, अजगर और डोंड़हा सर्प को मारे तो कृसरान्न (खिचड़ी) ब्राह्मणों को खिलाकर लोहे का डण्डा दक्षिणा में देवे तब उसकी शुद्धि होती है ॥९॥

शिशुमारं तथा गोधां हत्वा कूर्मं च शल्यकम्[2] ।
वृन्ताक-फलभक्षी [3]चाऽप्यहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥१०॥

शिशुमार (सूइस), गोधा (गोह), कछुआ तथा साही को मारने से वृन्ताक का फल खाकर दिन-रात रहने से शुद्धि होती है ॥१०॥

वृक जम्बुक ऋक्षाणां तरक्षूणां च घातने[4] ।
तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद् वायुभक्षो दिनत्रयम् ॥११॥

भेड़िया, सियार, भालू तथा तरक्षु (गैंडा) को मारे तो एक प्रस्थ तिल ब्राह्मण को देवे और तीन उपवास करे तब शुद्धि होती है ॥११॥

गजस्य च तुरङ्गस्य महिषोष्ट्रनिपातने ।
प्रायश्चित्तमहोरात्रं त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥१२॥

---

१. 'कपिञ्जलौ' इति । २. 'शल्लकं' इति । ३. 'वा' इति । ४. 'घातकः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हाथी, घोड़ा, भैंसा तथा ऊँट को मारने से एक दिन-रात उपवास करे और तीनों काल (प्रातः, मध्याह्न, सायं) स्नान करे तो शुद्ध होता है ॥१२॥

कुरङ्गं वानरं सिंहं चित्रं व्याघ्रं च घातयन् ।
शुद्ध्यते स त्रिरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१३॥

हरिन, वानर, सिंह, चीता और बाघ को मारे तो तीन दिन उपवास करे और ब्राह्मणों को भोजनादि से सन्तुष्ट करे तब शुद्धि होती है ॥१३॥

मृग रोहिद् वराहाणामवेर्बस्तस्य घातकः ।
अफालकृष्टमश्नीयादहोरात्रमुपोष्य सः ॥१४॥

मृग, रोही, शूकर, भेंड़ तथा बकरे को मारे तो एक दिन-रात उपवास करे, दूसरे दिन बिना जोते हुए ही जो अन्न उत्पन्न हो उसे खाये तब शुद्धि होती है ॥१४॥

एवं चतुष्पदानां च सर्वेषां वनचारिणाम् ।
अहोरात्रोषितस्तिष्ठेज्जपन् वै जातवेदसम्[1] ॥१५॥

इस प्रकार सम्पूर्ण जानवरों को अथवा जंगली चारपायों को मारे तो एक दिन-रात उपवास करे और 'ॐ जातवेदसे सुनवाम'—मन्त्र का जप करे, तो शुद्ध होता है ॥१५॥

शिल्पिनं कारुकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत् ।
प्राजापत्यद्वयं कृत्वा वृषैकादश दक्षिणा ॥१६॥

---

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो निदहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥—ऋ० १,१९,१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शिल्पी (चित्रकला करनेवाला), कारुक (रसोइया), शूद्र और स्त्री को जो मारे वह दो प्राजापत्य व्रत करे तथा वृष के सहित ग्यारह गौ दक्षिणा में देवे तब शुद्ध होता है ॥१६॥

वैश्यं वा क्षत्रियं वाऽपि निर्दोषं योऽभिघातयेत् ।
[1]सोऽतिकृच्छ्रद्वयं कुर्याद् गोविंशद् दक्षिणां ददेत् ॥१७॥

जो निर्दोष क्षत्रिय अथवा वैश्य को मारे, वह दो अतिकृच्छ्र व्रत करे और बीस गायों का दान करे तब शुद्ध होता है ॥१७॥

वैश्यं शूद्रं क्रियाऽऽसक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम् ।
हत्वा चान्द्रायणं[2] कुर्याद् दद्याद् गोत्रिंश दक्षिणाम् ॥१८॥

स्वक्रिया में निरत वैश्य अथवा शूद्र को किंवा स्वकर्म परिभ्रष्ट ब्राह्मण को यदि कोई मारे, तो चान्द्रायण व्रत कर तीस गौ का दान करने से वह शुद्ध होता है ॥१८॥

चाण्डालं हतवान् कश्चिद् ब्राह्मणो यदि कश्चन ॥
प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं गोद्वयं दक्षिणां ददेत् ॥१९॥

यदि किसी ब्राह्मण ने चाण्डाल का वध कर दिया हो तो वह प्राजापत्य कृच्छ्र करे और दो गौ को दक्षिणा में देवे ॥१९॥

क्षत्रियेणाऽपि वैश्येन शूद्रेणैवेतरेण वा ।
चाण्डालस्य वधे प्राप्ते कृच्छ्रार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥२०॥

यदि क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अथवा किसी अन्य ने चाण्डाल का वध कर दिया हो तो आधा कृच्छ्र व्रत से उसकी शुद्धि होती है ॥२०॥

[3]चौराः [4]श्वपाकचाण्डाला विप्रेणाभिहता[5] यदि ।
अहोरात्रोपितः स्नात्वा पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥२१॥

---

१. 'सोऽपि' इति । २. 'तस्य त्रिंशद् गाश्चैव दक्षिणा' इति क्वचित्पुस्तके ।
३. 'चोरः' इति । ४. 'पूर्वपाकश्चाण्डालो' इति । ५. 'विप्रेणाभिहतो' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि ब्राह्मण ने चोर, श्वपाक अथवा चाण्डाल का बध कर दिया हो तो वह दिन-रात उपवास कर पंचगव्य का प्राशन करे, तब उसकी शुद्धि होती है ॥२१॥

श्वपाकं [1]वाऽपि चाण्डालं विप्रः सम्भाषते यदि ।

द्विजसम्भाषणं कुर्यात् सावित्रीं च सकृज्जपेत् ॥२२॥

यदि ब्राह्मण श्वपाक अथवा चाण्डाल से संभाषण करे, तो वह अन्य ब्राह्मण से संभाषण कर एक बार गायत्री का जप करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥२२॥

चाण्डालैः सह सुप्ते तु त्रिरात्रमुपवासयेत् ।

चाण्डालैकपथं गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छुचिः ॥२३॥

चाण्डाल के साथ सोनेवाला तीन राततक उपवास करे और उसके साथ रास्ता चलनेवाला गायत्री का स्मरण करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥२३॥

चाण्डालदर्शने सद्य आदित्यमवलोकयेत् ।

चाण्डालस्पर्शने चैव सचैलं स्नानमाचरेत् ॥२४॥

यदि चाण्डाल को देख ले तो सूर्य-दर्शन से शुद्ध हो जाता है, और यदि चाण्डाल का स्पर्श हो (छू) जाय तो वस्त्र-सहित स्नान करे तब वह शुद्ध होता है ॥२४॥

चाण्डालखात वापीषु पीत्वा सलिलमग्रजः ।

अज्ञानाच्चैकभक्तेन त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥२५॥

यदि कोई ब्राह्मण अज्ञान से चाण्डाल के द्वारा निर्माण कराये गये वापी, कूप अथवा तालाब आदि का जल पी ले, या स्नान कर ले तो

१. 'चाऽपि' ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एक भक्त करे, फिर दिन-रात उपवास करे, तव उसकी शुद्धि होती है ॥२५॥

चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कूपगतं जलम् ।
गोमूत्र यावकाहार स्त्रिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात् ॥२६॥

जिस कूप में चाण्डाल ने अपना जलपात्र डाल रखा हो, उस कुएँ का जल पी ले, तो तीन दिनों तक गोमूत्र में जव पकाकर खावे तब शुद्धि होती है ॥२६॥

चाण्डालघटसंस्थं तु यत्तोयं पिबति द्विजः ।
तत्क्षणात् क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२७॥

यदि कोई ब्राह्मण चाण्डाल के घड़े का जल पी ले और ज्ञात होने पर उसी क्षण वमन कर दे, तो उसे शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करना चाहिए ॥२७॥

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्यति ।
प्राजापत्यं तदावश्यं कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२८॥

जो चाण्डाल के घड़े का जल पीकर ज्ञात होने पर भी वमन न करे और वह जल उसके शरीर में पच गया हो तो उसे शुद्धि के लिए कृच्छ्र सान्तपन व्रत करना चाहिए ॥२८॥

चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यमनन्तरः ।
तदर्द्धं तु चरेद् वैश्यः पादं शूद्रस्य दापयेत् ॥२९॥

ब्राह्मण कृच्छ्र सान्तपन करे, क्षत्रिय चाण्डाल का जल पचाकर प्राजापत्य करे। वैश्य चाण्डाल का जल पचाकर अर्द्धप्राजापत्य तथा शूद्र प्राजापत्य का चतुर्थांश व्रत करे ॥२९॥

भाण्डस्थमन्त्यजानां तु जलं दधि पयः पिवेत् ।
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्चैव प्रमादतः ॥३०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि प्रमाद-वश ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र–इन चार वर्णों में से कोई भी चाण्डाल के बरतन में रखे गये जल, दधि अथवा दूध को पी ले, तो ॥३०॥

ब्रह्मकूर्चोपवासेन[1] द्विजातीनां तु निष्कृतिः ।
शूद्रस्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः ॥३१॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की शुद्धि ब्रह्मकूर्च तथा उपवास से होती है। शूद्र उपवास तथा यथाशक्ति दान से शुद्ध हो जाता है ॥३१॥

भुङ्क्ते ऽज्ञानाद् द्विजश्रेष्ठश्चाण्डालान्नं कथञ्चन ।
गोमूत्र यावकाहाराद् दशरात्रेण शुद्धयति ॥३२॥

यदि ब्राह्मण अनजान में किसी भाँति चाण्डाल का अन्न खा ले तो गोमूत्र में पकाये हुए (यावक) को दश रात तक खाने से शुद्ध होता है। ३२॥

एकैकं ग्रासमश्नीयाद् [3]गोमूत्रयावकस्य च ।
दशाहं नियमस्तस्य व्रतं [4]तत्र विनिर्दिशेत् ॥३३॥

दश रात तक गोमूत्र में पके हुए यावक को दश दिन तक एक-एक ग्रास प्रतिदिन खाये तथा उतने ही दिन नियम से रहे तो अनजान में खाये हुए चाण्डाल के अन्न से शुद्धि होती है ॥३३॥

---

१. ब्रह्मकूर्चम्—

अहोरात्रोषितो भूत्वा पौर्णमास्यां विशेषतः ।
पञ्चगव्यां पिबेत् प्रातः 'ब्रह्मकूर्चम्' इति स्मृतम् ॥

अन्यत्राऽपि—

पञ्चगव्येन देवेशं यः स्नापयति भक्तितः ।
ब्रह्मकूर्चाभिधानेन विष्णुलोके महीयते ॥ इति ।

२ '–यावकाहारो' इति । ३. 'गोमूत्रे' इति । ४. 'तत्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अविज्ञातस्तु चाण्डालो यत्र वेश्मनि तिष्ठति ।
विज्ञाते तूपसंन्यस्य द्विजाः कुर्युरनुग्रहम् ॥३४॥

जिसके घर में बिना जाने चाण्डाल निवास करे। फिर ज्ञात हो जाने पर उसे अपने घर से बाहर निकाल देवे और ब्राह्मण का अनुग्रह प्राप्त कर, प्रायश्चित्त करे ॥३४॥

मुनिवक्त्रोद्गतान् धर्मान् गायन्तो वेदपारगाः ।
पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥३५॥

वेद-पारंगत धर्मज्ञ ब्राह्मण उस पतित हुए पुरुष का पराशरादि धर्मज्ञ महर्षियों के द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्त बताकर धर्मसंकट से उद्धार करें ॥३५॥

दध्ना च सर्पिषा चैव क्षीर गोमूत्र यावकम् ।
भुञ्जीत सह भृत्यैश्च त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥३६॥

महर्षियों के द्वारा उपदिष्ट प्रायश्चित्त जिसे उस पतित को करना चाहिए, इस प्रकार है : पतित पुरुष–जिसके घर में अनजाने चाण्डाल ने निवास किया हो–गोमूत्र में पके हुए यावक को दही, घी तथा दूध से भृत्यों के साथ भोजन करे और तीनों काल स्नान भी करे ॥३६॥

त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिषा ।
त्र्यहं क्षीरेण भुञ्जीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥३७॥

उपर्युक्त गोमूत्र में पके हुए यावक को खाने की विधि इस प्रकार है—तीन दिन तक (यावक को) दही से, तीन दिन तक घृत से तथा तीन दिन तक दूध से। इस प्रकार एक-एक से तीन दिन भोजन करे ॥३७॥

. 'सर्वैश्च' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भावदुष्टं न भुञ्जीत नोच्छिष्टं क्रमिदूषितम् ।
दधि क्षीरस्य त्रिपलं पलमेकं घृतस्य तु ॥३८॥

यदि यावक, अपवित्र (भावदुष्ट), उच्छिष्ट अथवा कृमि से दूषित हो, तो उसे न खावे। तीन दिनों तक यावक से खाये जानेवाले दही तथा दूध का परिमाण प्रतिदिन तीन पल (बारह तोले) तथा घी का परिमाण एक पल (चार तोले) होना चाहिए ॥३८॥

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोः ताम्र कांस्ययोः ।
जलशौचेन वस्त्राणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥३९॥

काँसे एवं ताँबे के पात्रों की शुद्धि भस्म (राख) से, वस्त्रों की शुद्धि जल के द्वारा तथा मिट्टी के पात्रों की शुद्धि उसे त्यागकर करनी चाहिए ॥३९॥

कुसुम्भ गुड कार्पास लवणं तैल सर्पिषी ।
द्वारे कृत्वा तु धान्यानि दद्याद् वेश्मनि पावकम् ॥४०॥

कुसुम्भ, गुड़, कपास, नमक, तेल तथा घी और अन्न को घर से बाहर द्वार पर निकालकर उस घर में आग लगा देनी चाहिए जिसमें चाण्डाल ने निवास किया हो ॥४०॥

एवं शुद्धस्ततः पश्चात् कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम् ।
[1]विंशति गा वृषं चैकं दद्याद् विप्रेषु दक्षिणाम् ॥४१॥

इस प्रकार घर की शुद्धि तथा अपनी शुद्धि कर उस पुरुष को ब्राह्मण-भोजन कराने के उपरान्त बीस गौ तथा एक बैल का दान करना चाहिए, जिसके घर में चाण्डाल ने निवास किया हो ॥४१॥

१. 'त्रिशतं' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पुनर्लेपन खातेन होम जप्येन शुद्ध्यति ।
आधारेण च विप्राणां भूमिदोषो न विद्यते ॥४२॥

प्रथम उस घर की भूमि को लीपने, खनने, होम तथा जपादि से शुद्ध करना चाहिए। फिर ब्राह्मणों को बिठाकर भोजन कराना चाहिए। क्योंकि ब्राह्मणों के बैठने से ही भूमि का दोष नष्ट हो जाता है ॥४२॥

चाण्डालैः सह सम्पर्कं मासं मासार्द्धमेव वा ।
गोमूत्रयावकाहारो मासार्द्धेन विशुद्ध्यति ॥४३॥

यदि चाण्डालों का साथ एक महीने अथवा एक पाख तक रहा हो तो १५ दिन तक गोमूत्र में पके हुए जव के खाने से उस पुरुष की शुद्धि होती है ॥४३॥

रजकी कर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी ।
चातुर्वर्ण्यस्य च गृहे त्वविज्ञाता तु तिष्ठति ॥४४॥

धोबिन, चमाइन, बहेलिन (बहेलिये की स्त्री) अथवा बाँस से जीविका करनेवाली (धरकारिन) यदि चारों वर्णों के घर में अनजान में निवास कर ले, तो ॥४४॥

ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव हि ।
गृहदाहं न कुर्वीत शेषं सर्वं च कारयेत् ॥४५॥

पता लगने पर चारों वर्णों को उसका प्रायश्चित्त करना चाहिए। केवल घर में आग न लगावे, शेष जैसा चाण्डाल के निवास का प्रायश्चित्त कहा है वह सभी प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥४५॥

१. 'जाप्येन' इति। २. 'ऽनुतिष्ठति' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेच्चाण्डालो यदि कस्यचित् ।
तमागाराद् विनिर्वास्य[1] मृद्भाण्डं तु विसर्जयेत् ॥४६॥

यदि किसी के घर में चाण्डाल चला जाय तो उस चाण्डाल को घर से बाहर निकालकर घर के मिट्टी के बर्तनों को फेंक देना चाहिए ॥४६॥

रसपूर्णं तु मृद्भाण्डं न त्यजेत्तु कदाचन ।
गोमयेन तु सम्मिश्रैर्जलैः प्रोक्षेद् गृहं तथा ॥४७॥

जिन मिट्टी के बर्तनों में रस, तेल, घी आदि भरा हो उसका त्याग नहीं करना चाहिए, गोबर से घर को लीप देना चाहिए ॥४७॥

ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे पूय-शोणितसम्भवे ।
कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥४८॥

यदि ब्राह्मण को व्रण (फोड़ा-घाव) होकर उसमें से खून अथवा पीब बहने लगे अथवा यदि उसमें कीड़े पड़ गये हों तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार करना चाहिए ? ॥४८॥

गवां मूत्र पुरीषेण [2]दध्ना क्षीरेण सर्पिषा ।
त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा च कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत् ॥४९॥

उस पुरुष को जिसके व्रण में कृमि पड़ गयी हों, तीन दिन तक पञ्चगव्य से स्नान करना चाहिए तथा पञ्चगव्य ही खाना चाहिए तो कृमिदोष से शुद्ध हो जाता है ॥४९॥

क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पञ्च माषान् [3]प्रदाय तु ।
गोदक्षिणां तु वैश्यस्याऽप्युपवासं विनिर्दिशेत् ॥५०॥

१. 'विनिःसार्य' इति । २. 'दधि-क्षीरेण' इति । ३. 'प्रदापयेत्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि किसी क्षत्रिय के व्रण में कृमि पड़ गयी हों तो उसे पाँच मासे सोने का दान करना चाहिए। यदि वैश्य हो तो उसे एक दिन उपवास कर गो-दान करना चाहिए। इस प्रकार करने से क्षत्रिय तथा वैश्य की शुद्धि होती है ॥५०॥

शूद्राणां नोपवासः स्यात् शूद्रो दानेन शुद्धयति ।
अच्छिद्रमिति यद्-वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः ॥५१॥

यदि शूद्र के व्रण में कृमि पड़ गयी हों तो उसे उपवास करने की आवश्यकता नहीं ह। वह केवल दान मात्र से ही शुद्ध हो जाता है। ब्राह्मण दान के अनन्तर यदि 'अच्छिद्रमस्तु' कह दें, तो ॥५१॥

प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलं हि तत् ।
जपच्छिद्रं तपश्छिद्रं यच्छिद्रं यज्ञकर्मणि ॥५२॥

उन्हें प्रणाम कर, उनके दिये हुए अक्षत को माथे पर चढ़ाने से अग्निष्टोम के तुल्य फल होता है। जप, तप तथा यज्ञादि में कोई छिद्र (दोष-त्रुटि) हो जाय तो ॥५२॥

सर्वं भवति निश्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ।
व्याधि-व्यसनि-निश्रान्ते दुर्भिक्षे डामरे तथा ॥५३॥

ब्राह्मणों के द्वारा कहे गये 'अच्छिद्रमस्तु' इस वाक्य मात्र से ही यजमान के समस्त जप, तप तथा यज्ञादि कर्म पूर्ण हो जाते हैं। व्याधि में, व्यसन में, थकी हुई अवस्था में, दुर्भिक्ष तथा राज-विप्लव होने पर, ॥५३॥

उपवासो व्रतं होमो द्विजसम्पादितानि वै ।
अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः सर्वे कुर्वन्त्यनुग्रहम् ॥५४॥

ब्राह्मणों के द्वारा जप, होम तथा व्रत करावे, यदि इस प्रकार ब्राह्मण सन्तुष्ट होकर अनुग्रह करें तो ॥५४॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वान् कामानवाप्नोति द्विजसम्पादितैरिह ।
दुर्बलेऽनुग्रहः प्रोक्तस्तथा वै बाल-वृद्धयोः ॥५५॥

इस प्रकार ब्राह्मण द्वारा व्रतादि से पुरुष की समस्त अभिलाषा पूर्ण हो जाती है । ब्राह्मणों को भी दुर्बल, बालक तथा वृद्ध पर विशेष रूप से अनुग्रह रखना चाहिए ॥५५॥

अतोऽन्यथा भवेद् दोषस्तस्मान्नानुग्रहः स्मृतः ।
स्नेहाद् वा यदि वालोभाद् भयादज्ञानतोऽपि वा ॥५६॥

इसके अतिरिक्त यदि बिना कारण ही ब्राह्मण अनुग्रह करे तो दोष होता है, क्योंकि किसी पर स्नेह, लोभ, भय तथा अज्ञान से किया गया अनुग्रह ॥५६॥

कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु तत्पापं तेषु गच्छति ।
शरीरस्याऽत्यये प्राप्ते वदन्ति नियमं तु ये ॥५७॥

ब्राह्मणों के लिए ही पाप का कारण बन जाता है । इसलिए दुर्बल बालक तथा वृद्ध के अतिरिक्त किसी पर भी स्नेहादिवश ब्राह्मण अनुग्रह न करे । शरीर के नाश होने की अवस्था में जो उसे नियम तथा व्रत का उपदेश करता है ॥५७॥

महत्कार्योपरोधेन न स्वस्थस्य कदाचन ।
स्वस्थस्य मूढाः कुर्वन्ति वदन्ति नियमं च[1] ये ॥५८॥

अथवा किसी बड़े कार्य में लगे या स्वस्थ व्यक्ति को उपदेश नहीं देते एवं वे मन्दबुद्धि उपदेशक स्वस्थों के लिए नियम का उपदेश नहीं करते ॥५८॥

ते तस्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽशुचौ ।
स्वयमेव व्रतं कृत्वा ब्राह्मणं योऽवमन्यते ॥५९॥

---

१. 'तु' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

इस प्रकार उपदेश करनेवाले लोग उस पुरुष के कार्य में विघ्न उत्पन्न करते हैं और अनुचित नरक में गिरते हैं। तथा जो ब्राह्मण के उपदेश के बिना ही स्वयं व्रत, नियम आदि का आचरण करते हैं ।५९॥

वृथा तस्योपवासः स्यान्न स पुण्येन युज्यते ।
स एव नियमो ग्राह्यो यमेकोऽपि वदेद् द्विजः ॥६०॥

ब्राह्मण के अपमान को करनेवाले उपपुरुष (जिसने ब्राह्मण के उपदेश के बिना ही व्रत तथा उपवास का अनुष्ठान किया है) का किया हुआ समस्त व्रत एवं उपवास व्यर्थ है, उसे कोई फल नहीं प्राप्त होता। इसलिए व्रत अथवा उपवास वेदज्ञ ब्राह्मण के उपदेश करने पर ही फलप्रद होता है ॥६०॥

कुर्याद् वाक्यं द्विजाना च त्वन्यथा भ्रूणहा भवेत् ।
ब्राह्मणा जङ्गमं तीर्थं तीर्थभूता हि साधवः ॥६१॥

ब्राह्मणों की आज्ञा माननी चाहिए। न मानने पर भ्रूणहत्या-जैसा महापाप लगता है। ब्राह्मण चलने-फिरनेवाले तीर्थ ही हैं। इसी प्रकार साधुजनों को भी तीर्थ-स्वरूप ही समझना चाहिए ॥६१॥

तेषां वाक्योदकेनैव शुद्ध्यन्ति मलिना जनाः ।
ब्राह्मणा यानि भाषन्ते मन्यन्ते तानि देवताः ॥६२॥

ब्राह्मणों के वाक्यरूप जल से मलिन पुरुष भी शुद्ध हो जाते हैं। ब्राह्मण जिस बात को कहते हैं, देवता लोग भी उस बात को मान लेते हैं ॥६२॥

सर्वदेवमयो विप्रो न तद्-वचनमन्यथा ।
उपवासो व्रतं चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः ॥६३॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मण सर्वदेवमय है, उसका कहा गया कोई भी वचन व्यर्थ नहीं होता। जो ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर उपवास, व्रत, स्नान तथा तीर्थ करते हैं ॥६३॥

[1]विप्रसम्पादितं यस्य सम्पूर्णं तस्य तत्फलम् ।
अन्नाद्ये कीटसंयुक्ते मक्षिका-केशदूषिते ॥६४॥

उन्हीं को उस स्नान, व्रतादि का सम्पूर्ण फल होता है। अन्न आदि किसी वस्तु में यदि कीड़ा पड़ जावे अथवा मक्खी या केश पड़ जावे, तो ॥६४॥

तदन्तरा स्पृशेच्चापस्तदन्नं भस्मना स्पृशेत् ।
भुञ्जानश्चैव यो विप्रः पादं हस्तेन संस्पृशेत् ॥६५॥

उसमें जल छोड़ देवे पश्चात् भस्म छिड़क देवे तो उस अन्न की शुद्धि हो जाती है। जो ब्राह्मण भोजन के समय अपने हाथ से पैरों को छू लेवे ॥६५॥

स्वमुच्छिष्टमसौ भुङ्क्ते यो भुङ्क्ते भुक्तभाजने ।
पादुकास्थो न भुञ्जीत पर्यङ्के[2] संस्थितोऽपि वा ॥६६॥

उसे उच्छिष्ट भोजन का पाप लगता है, अथवा उच्छिष्ट पात्र में भोजन करने से जो पाप लगता है वह उसे भी लगता है। खड़ाऊँ पर बैठकर भोजन न करे अथवा पर्यंक (खटिया) आदि पर बैठकर भी भोजन नहीं करे ॥६६॥

श्वान-चाण्डालदृष्टौ[3] च भोजनं परिवर्जयेत् ।
यदन्नं प्रतिषिद्धं स्यादन्नशुद्धिस्तथैव च ॥६७॥

---

१. 'विप्रैः' इति । २. 'पर्य्यङ्कस्थ-स्थितोऽपि' इति क्वचित्पुस्तके पाठः ।
३. 'दृक् चैव' इति ।

५

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुत्ता अथवा चाण्डाल के देखते भोजन नहीं करे। जो अन्न नहीं खाना चाहिए और जिस भाँति अन्न की शुद्धि होती है ॥६७॥

यथा पराशरेणोक्तं तथैवाऽहं वदामि वः ।
शृतं द्रोणाढकस्याऽन्नं काक-श्वानोपघातितम् ॥६८॥

पराशर ने इस विषय में जैसा कहा है, वह सब मैं आप लोगों से कहता हूँ। यदि द्रोण अथवा आढक में भरे हुए अन्न को कुत्ता अथवा कौआ जूठा कर दे, तो ॥६८॥

'केनेदं शुद्धयते ? चे'ति ब्राह्मणेभ्यो निवेदयेत् ।
काक-श्वानावलीढं तु द्रोणान्नं न परित्यजेत् ॥६९॥

'उसकी शुद्धि किस प्रकार होगी ?' इसपर पराशर का मत है कि कुत्ता अथवा कौआ यदि द्रोण परिमाण अन्न को दूषित कर दे तो उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥६९॥

वेद-वेदाङ्गविद्-विप्रैर्धर्मशास्त्रानुपालकैः ।
प्रस्था द्वात्रिंशतिर्द्रोणः [1]स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः ॥७०॥

वेद, वेदाङ्ग को जाननेवाले तथा धर्मशास्त्रों का पालन करनेवाले ब्राह्मणों ने ३२ प्रस्थ का द्रोण कहा है और दो प्रस्थ को आढक कहा है ॥७०॥

ततो द्रोणाऽऽढकस्यान्नं श्रुति-स्मृतिविदो विदुः ।
काक-श्वानावलीढं तु गवाघ्रातं खरेण वा ॥७१॥

इसलिए श्रुति तथा स्मृति को जाननेवाले ब्राह्मणों ने कहा है कि यदि द्रोण वा आढक परिमाणवाले अन्न को कौआ या कुत्ता जूठा

---

१. 'प्रस्थाश्चत्वार आढकाः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कर दे अथवा गौ और गधे ने उसे सूँघ लिया हो, तो भी उसका त्याग नहीं करना चाहिए ॥७१॥

स्वल्पमन्नं त्यजेद् विप्रः शुद्धिर्द्रोणाऽऽढके भवेत् ।
अन्नस्योद्धृत्य तन्मात्रं यच्च लालाहतं भवेत् ॥७२॥

परिमाण में यदि अन्न थोड़ा हो तो उसे ही कौआ, कुत्ता के द्वारा जूठा करने पर गौ अथवा गधे से सूँघे जाने पर, त्याग करे। किन्तु द्रोण अथवा आढक परिमाणवाले अन्न को जितने में लार लगी हो उसे निकालकर फेंक दे, शेष की शुद्धि इस प्रकार करे ॥७२॥

सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य हुताशनेन तापयेत् ।
हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसलिलेन च ॥७३॥

निकालने से शेष अन्न को सोने के जल से धोकर आग में तपा देवे, तब वह शुद्ध हो जाता है। क्योंकि सोने के जल से धोकर आग में तपा देने से, ॥७३॥

विप्राणां [1]वेदघोषेण भोज्यं भवति तत्क्षणात् ।
स्नेहो वा गोरसो वाऽपि तत्र शुद्धिः कथं भवेत् ? ॥७४॥

तदनन्तर ब्राह्मणों के वेद-घोष से अन्न भोजन के योग्य हो जाता है। यदि कोई स्नेह (घी, तेल) अथवा गोरस (दूध, दही) आदि कुत्ते, कौवे ने जूठा कर दिया हो, अथवा गौ, गधे ने उसको सूँघ लिया हो तो उसकी शुद्धि किस प्रकार करनी चाहिए ? ॥७४॥

---

१. 'ब्रह्मघोषेण' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अल्पं परित्यजेदन्नं[1] स्नेहस्योत्पवनेन च ।
अनलज्वालया शुद्धिर्गोरसस्य विधीयते ।।७५।।

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे प्राणिहत्यादि-निष्कृतिर्नाम
षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

यदि स्वल्प थोड़ा अन्न काकादि से उपहृत हो, तो उसे फेंक देना चाहिये। परन्तु यदि चिकना घृत या तेल हो तो उसे कुशों के द्वारा ऊपर उछालना चाहिए और यदि गोरस (दूध, दही आदि) हो तो आग पर रख देने से शुद्ध हो जाता है ।। ७५ ।।

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका में
पाराशरीय धर्मशास्त्र का छठा अध्याय समाप्त ।।६।।

*

७. सप्तमोऽध्यायः

अथाऽतो द्रव्यसंशुद्धिः पराशरवचो यथा ।
दारवाणां तु पात्राणां तत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।। १ ।।

इसके अनन्तर पराशर मुनि के मतानुसार द्रव्यों की शुद्धि कहता हूँ। काठ के बने हुए पात्र यदि अमेध्य वस्तु के सम्पर्क से दूषित हो जायें तो उन्हें किञ्चित् छील देने से शुद्धि हो जाती है ।।१।।

मार्जनाद् यज्ञपात्राणां पाणिना यज्ञकर्मणि ।
चमसानां[2] ग्रहाणां[3] च शुद्धिः प्रक्षालनेन तु ।। २ ।।

---

१. 'तत्र' इति ।

२. चमत्यस्मिन्नसौ चमसः । पलाशादिकाष्ठनिर्मितो यज्ञियपात्रविशेषः ।

३. गृह्यतेऽस्मिन्निति व्युत्पत्त्या सोमाधारभूतं ग्रहशब्देनाभिधीयते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यज्ञकर्म में यज्ञीय पात्रों की शुद्धि हाथ से पोछ देने पर होती है। किन्तु चमस एवं ग्रह नामक यज्ञीय पात्र जल से धोने पर शुद्ध हो जाते हैं ।२॥

चरूणां च स्रुवाणां च शुद्धिरुष्णेन वारिणा।
भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यते ॥ ३ ॥

चरु पात्र तथा स्रुव की शुद्धि गरम जल में डाल देने से होती है। काँस का बरतन भस्म (राख) से तथा ताँबे का बरतन खटाई से शुद्ध होता है ॥३॥

रजसा शुद्ध्यते नारी विकलं या न गच्छति।
नदी वेगेन शुद्ध्येत लेपो यदि न दृश्यते ॥ ४ ॥

स्त्री यदि नीचादि सम्पर्क से दूषित न हो तो रजस्वला हो जाने पर शुद्ध हो जाती है। (केवल मानस-व्यभिचार करने पर)। (अथवा पीतल का बरतन मिट्टी से रगड़ने पर शुद्ध होता है)। यदि नदी में कोई लेप (विकृत पदार्थ) न दीख पड़े, तो वह वेग से शुद्ध हो जाती है ॥४॥

वापी-कूप-तडागेषु दूषितेषु कथञ्चन।
उद्धृत्य वै कुम्भशतं पञ्चगव्येन शुद्ध्यति ॥ ५ ॥

यदि वापी, कूप और तड़ाग (तालाब) किसी कारण से दूषित हो गये हों तो उनमें से सौ घड़ा जल निकालकर पंचगव्य डालने से शुद्ध हो जाते हैं ॥५॥

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा तु रोहिणी।
दशवर्षा भवेत् कन्या अत ऊर्ध्वं रजस्वला ॥ ६ ॥

---

१. चरति होमादिकमस्मादसौ चरुः।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

आठ वर्ष की कन्या 'गौरी' नव वर्ष की 'रोहिणी', तथा दश वर्ष की 'कन्या' कही जाती है। इससे अधिक अवस्था होने पर वह कन्या 'रजस्वला' कही जाती है ॥६॥

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति ।
मासि मासि रजस्तस्याः पिबन्ति पितरः स्वयम् ॥ ७ ॥

बारह वर्ष की अवस्था हो जाने पर जो लोग कन्यादान नहीं करते उनके पितर उस कन्या का रज प्रति मास पीते रहते हैं। अतः दश वर्ष की अवस्था में कन्यादान कर देना चाहिये ॥७॥

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च ।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम् ॥ ८ ॥

यदि कन्या विवाह के पहले ही रजस्वला हो गयी हो, तो रजस्वला कन्या को देखकर उसके माता, पिता तथा जेठे भाई नरक में जाते हैं ॥८॥

यस्तां समुद्वहेत् कन्यां ब्राह्मणो मदमोहितः ।
असम्भाष्यो ह्यपाङ्क्तेयः स विप्रो वृषलीपतिः ॥ ९ ॥

उस रजस्वला कन्या से जो ब्राह्मण मद से मोहित होकर विवाह कर लेता है, उसे 'वृषलीपति' कहते हैं। द्विजातियों को उससे सम्भाषण नहीं करना चाहिए और उसको पंक्ति से बाहर कर देना चाहिए ॥९॥

यः करोत्येकरात्रेण वृषलीसेवनं द्विजः ।
स भैक्षभुग् जपन्नित्यं त्रिभिर्वर्षैर्विशुद्ध्यति ॥१०॥

जो ब्राह्मण एक रात भी (वृषली) रजस्वला कन्या का सेवन करता है वह तीन वर्ष तक भिक्षान्न का भोजन करता हुआ गायत्री का जप करे, तब उसकी शुद्धि होती है ॥१०॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अस्तङ्गते यदा सूर्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम् ।
सूतिकां स्पृशतश्चैव कथं शुद्धिर्विधीयते[1] ? ॥११॥

सूर्य के अस्त हो जाने प यदि पतित पुरुष, चाण्डाल अथवा सूतिका स्त्री का स्पर्श हो जावे तो उन द्विजातियों की शुद्धि किस प्रकार होगी ? ॥११॥

जातवेदं सुवर्णं च सोममार्गं विलोक्य च ।
ब्राह्मणाऽनुमतश्चैव स्नानं कृत्वा विशुद्ध्यति ॥१२॥

जातवेद (अग्नि), सुवर्ण तथा चन्द्रमा (चन्द्रमा के अभाव में चन्द्र-पथ) को देखकर द्विजाति, ब्राह्मणों की आज्ञा से स-चैल (वस्त्र-सहित) स्नान करे तब उनकी शुद्धि होती है ॥१२॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणीं तथा ।
तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुद्ध्यति ॥१३॥

यदि रजस्वला ब्राह्मणी किसी दूसरी रजस्वला ब्राह्मणी से छू जावे तो उन दोनों रजस्वलाओं को तीन दिनों तक उपवास करना चाहिए । फिर स्नान कर शुद्ध हो जाती हैं ॥१३॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रियां तथा ।
अर्द्धकृच्छ्रं चरेत् पूर्वा पादमेकं त्वनन्तरा ॥१४॥

यदि ब्राह्मणी रजस्वला तथा क्षत्राणी रजस्वला परस्पर एक दूसरे को उस अवस्था में छू लें, तो ब्राह्मणी रजस्वला अर्द्धकृच्छ्र तथा क्षत्राणी रजस्वला पादकृच्छ व्रत करे तब उनकी शुद्धि होती है ॥१४॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी वैश्यजां तथा ।
पादहीनं चरेत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥१५॥

---

१. 'विशिष्यते' इति क्वचित्पुस्तके ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि ब्राह्मणी रजस्वला किसी वैश्य रजस्वला स्त्री से छू जाय तो ब्राह्मणी रजस्वला त्रिपादकृच्छ्र तथा वैश्य की रजस्वला स्त्री पादकृच्छ्र व्रत करे। इस प्रकार दोनों की शुद्धि होती है ॥१५॥

स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजां तथा ।
कृच्छ्रेण शुद्ध्यते पूर्वा शूद्रा दानेन शुद्ध्यति ॥१६॥

यदि ब्राह्मणी रजस्वला किसी शूद्र जातीय रजस्वला स्त्री से स्पृष्ट हो जाय तो ब्राह्मणी सम्पूर्ण कृच्छ्र व्रत करे तथा शूद्रा स्त्री केवल दान से शुद्ध होती है ॥१६॥

स्नाता रजस्वला या तु चतुर्थेऽहनि शुद्ध्यति ।
कुर्याद् रजोनिवृत्तौ तु देव-पित्र्यादि कर्म च ॥१७॥

रजस्वला स्त्री चौथे दिन स्नान करने के उपरान्त शुद्ध हो जाती है। परन्तु जब तक रज से उसकी पूर्ण निवृत्ति नहीं हो जाती, तब तक वह देवता तथा पितृकार्य करने की अधिकारिणी नहीं होती ॥१७॥

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहं तु प्रवर्तते ।
नाऽशुचिः सा ततस्तेन तत् स्याद् [1]वैकालिकं मलम् ॥१८॥

यदि स्त्री को नित्य-प्रति रोग के कारण रज निकलता हो तो वह उस रज से अपवित्र नहीं होती। क्योंकि वह अकालिक धातुगत मल है ॥१८॥

साध्वाचारा न तावत् स्याद् रजो यावत् प्रवर्तते ।
रजोनिवृत्तौ गम्या स्त्री गृहकर्मणि चैव हि ॥१९॥

जब तक स्त्री को रज निकलता रहे तब तक वह देव तथा पितृकर्म की अधिकारिणी नहीं रहती। रजोनिवृत्ति के उपरान्त ही वह संभोग के योग्य तथा गृह-कर्म के योग्य होती है ॥१९॥

---

१. 'वैकारिकं मल' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी ।
तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुद्धयति ॥२०॥

स्त्री रजोधर्म के प्रथम दिन चाण्डाली, दूसरे दिन ब्रह्मघातिनी तथा तीसरे दिन रजकी (धोबिन) के तुल्य होती है। फिर चौथे दिन स्नान के उपरान्त शुद्ध होती है ॥२०॥

आतुरे स्नान उत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः ।
स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धयेत् स आतुरः ॥२१॥

यदि किसी आतुर को स्नान करना आवश्यक हो, तो अनातुर (स्वस्थ पुरुष) दश बार स्नान कर प्रत्येक स्नान के अनन्तर उसका स्पर्श करने से वह आतुर पुरुष शुद्ध हो जाता है ॥२१॥

उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः शुना शूद्रेण वा द्विजः ।
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥२२॥

यदि कोई जूठे मुँहवाला ब्राह्मण किसी दूसरे जूठे मुँहवाले पुरुष अथवा कुत्ता या शूद्र का स्पर्श कर ले, तो वह ब्राह्मण एक रात उपवास कर पंचगव्य (गौ का दूध, दही, घी, गोबर, गोमूत्र) का प्राशन करे तब उसकी शुद्धि होती है ॥२२॥

अनुच्छिष्टेन शूद्रेण स्पर्शे स्नानं विधीयते ।
तेनोच्छिष्टेन संस्पृष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२३॥

यदि जूठा मुँहवाला ब्राह्मण किसी अनुच्छिष्ट शूद्र से छू जाय तो स्नान करे और यदि शूद्र जूठे मुँहवाला हो, उससे ब्राह्मण छू जाय तो प्राजापत्य व्रत करे ॥२३॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते ।
सुरामात्रेण संस्पृष्टं शुद्ध्यतेऽग्न्युपलेखनैः[1] ॥२४॥

जो काँस पात्र में मद्य का स्पर्श न हुआ हो, तो वह भस्म से मलने पर शुद्ध हो जाता है । किन्तु मद्य के स्पर्श हो जानेपर अग्नि में तपाकर माँजने से उसकी शुद्धि होती है ॥२४॥

गावाघ्रातानि कांस्यानि श्व-काकोपहतानि च ।
शुद्ध्यन्ति दशभिः क्षारैः शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥२५॥

जिस काँस के पात्र को गौ ने सूँघ लिया हो, कुत्ता अथवा कौवे ने उसे दूषित कर दिया हो अथवा शूद्र के द्वारा वह उच्छिष्ट कर दिया गया हो वह दश बार क्षार (खट्टे) पदार्थ के द्वारा मलने से शुद्ध होता है ॥२५॥

गण्डूषं पादशौचं च कृत्वा वै कांस्यभाजने ।
षण्मासान् भुवि निक्षिप्य उद्धृत्य पुनराहरेत् ॥२६॥

काँस के बरतन में कुल्ला कर देने पर अथवा पैर धो लेने पर छः महीने तक उसे पृथ्वी में गाड़े । तदनन्तर उसका व्यवहार करे ॥२६॥

आयसेष्वायसानां च सीसस्याऽग्नौ विशोधनम् ।
दन्तमस्थि तथा शृङ्गं रौप्यं सौवर्णभाजनम् ॥२७॥

लोहे के पात्र के अशुद्ध हो जाने पर उसे लोहे से रगड़े । शीशे के पात्र के अशुद्ध हो जाने पर उसे अग्नि में तपावे । दाँत, हड्डी, सींग, चाँदी एवं सोने के बने हुए पात्र, ॥२७॥

मणिपात्राणि शङ्खश्चेत्येतान् प्रक्षालयेज्जलैः ।
पाषाणे तु पुनर्घर्षः शुद्धिरेवमुदाहृता ॥२८॥

१. '-ऽग्न्युपलेपनैः' इति पुस्तकान्तरे ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मणि के पात्र तथा शंख ये जल के प्रक्षालन मात्र से ही शुद्ध हो जाते हैं। परन्तु पत्थर का बना हुआ पात्र पत्थर से रगड़ने से ही शुद्ध होता है ॥२८॥

मृण्मये दहनाच्छुद्धिर्धान्यानां मार्जनादपि ।
वेणु-वल्कल-चीराणां क्षौम-कार्पास-वाससाम् ॥२९॥

मिट्टी के बरतन आग पर तपाने से शुद्ध होते हैं, तथा धान्य की शुद्धि जल के छींटे दे देने से होती है। इसी प्रकार बाँस के पात्र, वल्कल, चीर (फटे वस्त्र), रेशमी एवं सूती वस्त्र ॥२९॥

और्ण-नेत्रपटानां च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
मुञ्जोपस्कर-शूर्पाणां शणस्य फल-चर्मणाम् ॥३०॥

तथा ऊनी वस्त्र और सन से निर्मित वस्त्रों की शुद्धि जल के छींटे देने से हो जाती है। मूँज, उपस्कर (घर को शुद्ध करनेवाले झाड़ू), सूप, सन, फल, चाम ॥३०॥

तृणकाष्ठस्य रज्जूनामुदकाभ्युक्षणं मतम् ।
तूलिकाद्युपधानानि रक्तवस्त्रादिकानि च ॥३१॥

तथा तृण, काष्ठ और रस्सी की शुद्धि केवल जल के प्रोक्षण (छींटा देने) मात्र से हो जाती है। तकिया, लाल रंग में रँगे हुए वस्त्र ॥३१॥

शोषयित्वाऽर्कतापेन[1] प्रोक्षणाच्छुद्धितामियुः ।
मार्जार-मक्षिका-कीट-पतङ्ग-कृमि-दर्दुराः ॥ ३२ ॥

धूप में सुखाकर जल के छींटा दे देने से शुद्ध हो जाते हैं। बिल्ली, मक्खी, कीट, पतग तथा मेढक ॥३२।

---

१. '-ऽऽतपेनैव' इति । २. 'मनुरब्रवीत्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मेध्याऽमेध्यं स्पृशन्तोऽपि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ।
महीं स्पृष्ट्वाऽऽगतं तोयं याश्चाप्यस्याऽऽस्यविप्रुषः ॥३३॥

ये पवित्र अथवा अपवित्र वस्तु को छूते रहते हैं। इसलिए इनके स्पर्श से कोई वस्तु उच्छिष्ट नहीं होती, ऐसा मनु का वचन है। धरती में गिरकर आनेवाला जल अथवा बोलने में मुख के द्वारा गिरा हुआ थूक का छींटा, ॥३३॥

भुक्तोच्छिष्टं तथा स्नेहं नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ।
ताम्बूलेक्षु-फले चैव भुक्तस्नेहानुलेपने ॥३४॥

खाने में बार-बार ग्रास (कौर) ग्रहण करने में तथा शरीर पर लगाने से अवशिष्ट रहनेवाला तेल आदि पदार्थ जूठे नहीं कहे जाते। ताम्बूल, फल, ऊख, भोजनकाल में लगा हुआ चिकना घी आदि पदार्थ, ॥३४॥

मधुपर्के च सोमे च नोच्छिष्टं धर्मतो विदुः ।
रथ्याकर्दम-तोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥३५॥

मधुपर्क, सोमलता रस ये सभी पदार्थ धर्मतः जूठे नहीं होते। गली, कीचड़ का जल, नौका, सड़क तथा तृण, पके हुए ईटों का भट्ठा ॥३५॥

मारुतार्केण शुद्ध्यन्ति पक्वेष्टकचितानि च ।
अदुष्टाः सन्तता धारा वातोद्धूताश्च रेणवः ॥ ३६ ॥

ये सभी पदार्थ वायु तथा सूर्य की किरणों के संयोग से सदैव शुद्ध रहते हैं। सदैव बहती हुई धारा तथा वायु के झोंके से उड़ी हुई धूल भी अशुद्ध नहीं होती ॥३६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः न दुष्यन्ति कदाचन ।
क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते ॥३७॥

इसी प्रकार स्त्री, बालक तथा वृद्ध ये भी कभी दूषित नहीं होते। छींकने पर, थूकने पर, दाँत में जूठा रह जाने पर तथा अकस्मात् झूठ बोल देने पर, ॥३७॥

पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ।
अग्निरापश्च वेदाश्च सोम-सूर्या-ऽनिलास्तथा ॥३८॥

पतितों से संभाषण करने पर ब्राह्मण सदैव अपने दाहिने कान का स्पर्श करे। क्योंकि अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य, वायु आदि देवता, ॥३८॥

एते सर्वेऽपि विप्राणां श्रोत्रे तिष्ठन्ति दक्षिणे ।
प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाद्याः सरितस्तथा ॥३९॥

प्रभास आदि श्रेष्ठ तीर्थ तथा गङ्गादि उत्तम-उत्तम नदियाँ ॥३९॥

विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं मनुरब्रवीत् ।
देशभङ्गे प्रवासे वा व्याधिषु व्यसनेष्वपि ॥४०॥

ब्राह्मण के दक्षिण कर्ण में निवास करती हैं, ऐसा मनु का कथन है। देश में विप्लव होने पर, विदेश में, व्याधि और व्यसन में, ॥४०॥

रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धर्मं समाचरेत् ।
येन केन च धर्मेण मृदुना दारुणेन वा ॥४१॥

सर्वप्रथम अपने शरीर की रक्षा करे। पश्चात् धर्म करे। पुरुष को जिस किसी भी कोमल या कठोर उपाय से विपत्ति में पड़े हुए ॥४१॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उद्धरेद् दीनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत् ।
आपत्काले तु निस्तीर्णे [1]शौचाऽऽचारं विचिन्तयेत् ।
शुद्धिं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो[2] धर्मं समाचरेत् ।।४२।।

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे द्रव्यशुद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ।।७।।

अपने दीन आत्मा का उद्धार करना चाहिए। विपत्ति को पार कर लेने पर, शौचाचार की चिन्ता करनी चाहिए। आपत्काल के अनन्तर ही अपनी शुद्धि करे। फिर स्वस्थ होने पर धर्माचरण करे ।।४।।

इस प्रकार आचार्य पण्डित शिवदत्तमिश्र शास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीका में पराशरप्रोक्त धर्मशास्त्र में सप्तम अध्याय समाप्त । ७।।

*

८. अष्टमोऽध्यायः

गवां बन्धनयोक्त्रेषु भवेन्मृत्युरकामतः ।
अकामकृत पापस्य प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ।। १ ।।

यदि गौ अथवा बैल की मृत्यु अनजान में खूंटे में बांधने अथवा जूआ आदि में जीतने से हो जाये तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार करना चाहिए ? ।।१।।

वेद-वेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम् ।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेदयेत् ।। २ ।।

ऐसे पुरुष को उचित है कि वह वेद, वेदांग तथा धर्मशास्त्र के जानने वाले एवं स्वकर्म धर्मानुष्ठान में निरत तपस्वी ब्राह्मणों के पास जाकर अपना पाप बतलावे ।।२।।

१. शौचाचारं न चिन्तयेत्' इति क्वचित्पुस्तके । २. 'समर्थो धर्ममाचरेत्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्षणम् ।
उपस्थितो हि न्यायेन [1]व्रतादेशनमर्हहि ॥ ३ ॥

इसके अनन्तर उस मनुष्य को किस प्रकार उन ब्राह्मणों के पास जाना चाहिए, यह मैं कहता हूँ। पुरुष को उचित प्रकार से विनय एवं न्यायपूर्वक विद्वानों के पास जाना चाहिए। तभी वह व्रतादेश का अधिकारी होता है ॥३॥

सद्यो निःसंशये पापे न भुञ्जीताऽनुपस्थितः ।
भुञ्जानो वर्धयेत् पापं पर्षद्यत्र न विद्यते ॥ ४ ॥

यदि यह निश्चय हो जाय कि मैंने पाप कर दिया है तो उसे विद्वत्-परिषद् में बिना निवेदन किये हुए भोजन नहीं करना चाहिए। क्योंकि पाप के अनन्तर परिषद् में बिना निवेदन किये भोजन कर लेने पर पाप बढ़ जाता है ॥४॥

संशये तु न भोक्तव्यं यावत्कार्यविनिश्चयः ।
प्रमादश्च न कर्तव्यो यथैवासंशयस्तथा ॥ ५ ॥

यदि पाप में कोई सन्देह हो गया हो तो भी जब तक उसका निश्चय न हो जाय तब तक भोजन नहीं करना चाहिए। इस विषय में सर्वप्रथम यही कर्तव्य है कि जिससे सन्देह दूर हो ॥५॥

कृत्वा पापं न गूहेत गुह्यमानं विवर्द्धते ।
स्वल्पं वाऽथ प्रभूतं वा धर्मविद्भ्यो निवेदयेत् ॥ ६ ॥

पुरुष को उचित है कि वह पाप करने पर उसे न छिपावे। क्योंकि छिपाया हुआ पाप बढ़ता है। पाप चाहे थोड़ा हो अथवा अधिक हो सर्वप्रथम धर्मवेत्ता से उसको निवेदन कर देना उचित है ॥६॥

१, 'व्रतादेशं समर्हति' इति पाठान्तरम् ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[1]ते हि पापे कृते वैद्या हन्तारश्चैव पाप्मनाम् ।
व्याधितस्य यथा वैद्या बुद्धिमन्तो रुजापहाः ।। ७ ।।

क्योंकि धर्मशास्त्रवेत्ता ब्राह्मण पाप के वैद्य हैं। वे पापों को नष्ट करने में उसी प्रकार समर्थ हैं जिस प्रकार बुद्धिमान् वैद्य रोगी के रोग को दूर कर उसे स्वस्थ बना देता है ।।७।।

प्रायश्चित्त समुत्पन्ने ह्रीमान् सत्यपरायणः ।
मृदुरार्जवसम्पन्नः शुद्धिं गच्छेत मानवः ।। ८ ।।

प्रायश्चित्त लगने पर पुरुष को सत्यपरायण, सरलता एवं दयायुक्त हो जाने पर ही उसकी शुद्धि की जा सकती है ।।८।।

सचैलं वाग्यतः स्नात्वा क्लिन्नवासाः समाहितः ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्या वा ततः पर्षदमाव्रजेत् ।। ९ ।।

पाप का निश्चय हो जाने पर क्षत्रिय अथवा वैश्य पुरुष मौन होकर वस्त्र समेत स्नान करे। फिर गीला वस्त्र पहनकर विद्वानों की परिषद् में पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए जाये ।।९।।

उपस्थाय ततः शीघ्रमार्तिमान् धरणिं व्रजेत् ।
गात्रैश्च शिरसा चैव न च किञ्चिदुदाहरेत् । १० ।।

फिर शीघ्रता से दुःखी होकर ब्राह्मणों की परिषदों को पृथ्वी पर सारे शरीर और शिर को लम्बा कर दण्डवत् करे और कुछ भी न बोले ।।१०।।

सावित्र्याश्चाऽपि गायत्र्याः सन्ध्योपास्त्यग्निकार्ययोः ।
अज्ञानात् कृषिकर्तारा ब्राह्मणा नामधारकाः ।। ११ ।।

---

१. 'तेऽपि पापकृतां' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रन्थकार परिषद् का लक्षण कहते हैं—जो ब्राह्मण अज्ञान से गायत्री और सावित्री नहीं जानते, न संध्योपासन एवं अग्निहोत्र ही करते हैं, केवल खेती से जीविका करते हैं वे नाममात्र के ब्राह्मण हैं। ऐसे ब्राह्मणों की परिषद् नहीं होती ॥११॥

अव्रतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम् ।
सहस्रशः समेतानां परिषत्वं न विद्यते ॥१२॥

ब्रह्मचर्यादि व्रतों एवं वेदमन्त्रादि से हीन केवल जातिमात्र से जीविका करनेवाले हजारों ब्राह्मणों के इकट्ठे होने पर भी वह परिषद् नहीं होती ॥१२॥

यद् वदन्ति तमोमूढा मूर्खा धर्ममतद्विदः ।
तत्पाप शतधा भूत्वा तद्वक्तॄनधिगच्छति ॥१३॥

धर्म को न जाननेवाले तमोगुणी मूर्ख लोग जो भी कहते हैं वह पाप सौ गुना होकर उन मूर्खों को ही लगता है ॥१३॥

अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं ददाति यः ।
प्रायश्चित्ती भवेत् पूतः किल्बिषं पर्षदि व्रजेत् ॥१४॥

जो धर्मशास्त्रों को जाने बिना ही प्रायश्चित्त की व्यवस्था देता है उससे प्रायश्चित्त करनेवाला पापी तो शुद्ध हो जाता है, परन्तु वह प्रायश्चित्त बतलानेवाले पुरुष एवं परिषद् को लग जाता है ॥१४॥

चत्वारो वा त्रयो वाऽपि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः ।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः ॥१५॥

वेदज्ञ धर्मात्मा पुरुष यदि केवल तीन अथवा चार ही हों तो उनके द्वारा दी गयी व्यवस्था ही धर्मतः मान्य है। इतर हजारों के कहने से भी व्यवस्था धर्मतः मान्य नहीं होती ॥१५॥

प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै ।
तेषामुद्विजते पापं सद्भूतगुणवादिनाम् ॥१६॥

६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शास्त्रीय प्रमाणों को अनुसंधान कर धर्मज्ञ लोग जो व्यवस्था देते हैं वही व्यवस्था माननीय है। क्योंकि ऐसे ही प्रमाणज्ञ धर्मवेत्ताओं से पाप डरता है ॥१६॥

यथाऽश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्केण शुद्ध्यति ।
एवं परिषदादेशान् नाशयेत्तस्य दुष्कृतम् ॥१७॥

जिस प्रकार पत्थर का जल हवा तथा सूर्यरश्मि से विनष्ट हो जाता है उसी प्रकार वेदज्ञ तीन अथवा चार ब्राह्मणों की परिषद् के आदेश से भी पाप का नाश हो जाता है ॥१७॥

नैव गच्छति कर्तारं नैव गच्छति पर्षदम् ।
मारुतार्कादि-संयोगात् पापं नश्यति तोयवत् ॥१८॥

धर्मात्माओं के आदेश से प्रायश्चित्त करनेवाले पुरुष का पाप न तो व्यवस्था देनेवाली परिषद को लगता है और न तो प्रायश्चित्त करने-वालों को ही। किन्तु जिस प्रकार सूर्य और हवा के संयोग से जल का विनाश हो जाता है उसी प्रकार वह पाप भी विनष्ट हो जाता है ॥ १८ ॥

चत्वारो वा त्रयो वाऽपि वेदवन्तोऽग्निहोत्रिणः ।
ब्राह्मणानां समर्था ये परिषत् साऽभिधीयते[2] ॥१९॥

ब्राह्मणों में विद्या आदि सद्गुणों से समर्थ, वेदज्ञ तीन अथवा चार अग्निहोत्री ब्राह्मणों को ही परिषद् कहते हैं ॥१९॥

अनाहिताग्नयो येऽन्ये वेद-वेदाङ्गपारगाः ।
पञ्च त्रयो वा धर्मज्ञाः परिषत् सा प्रकीर्तिता ॥२०॥

वेद, वेदाङ्ग में पारंगत धर्मशास्त्रों को जाननेवाले पाँच या तीन ब्राह्मण यदि अग्निहोत्र न भी करते हों तो उसे भी 'परिषद्' कहते हैं ॥ २० ॥

---

१. 'त्तत्र' इति । २. 'विधीयते' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम् ।
वेदव्रतेषु स्नातानामेकाऽपि परिषद् भवेत् ॥२१॥

आत्मविद्या के जाननेवाले मुनि, यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण तथा वेदज्ञ स्नातक इनमें से किसी एक को भी 'परिषद्' कहते हैं ॥ २१॥

पञ्च पूर्वं मया प्रोक्तास्तेषां चाऽसम्भवे त्रयः ।
स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्तिता ॥२२॥

मैंने पाँच प्रकार की परिषद् कही : १. उन्नीसवें श्लोक में, २. बीसवें श्लोक में तथा तीन प्रकार की इक्कीसवें श्लोक में। यदि पाँचों प्रकार की परिषद् असम्भव हो तो अपनी वृत्ति (सदाचार) से सन्तुष्ट रहनेवाले ब्राह्मणों को भी 'परिषद्' कहते हैं ॥२२॥

अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः ।
परिषत्त्वं न [1]तेष्वस्ति सहस्रगुणितेष्वपि ॥२३॥

इसके अनन्तर जो श्रुत तथा तप से विहीन योनिमात्र से केवल नाममात्र के ब्राह्मण हैं उनके हजारगुना की संख्या से भी परिषद् नहीं होती ॥२३॥

यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्त्रयस्ते नामधारकाः ॥२४॥

जिस प्रकार काठ का हाथी एवं चमड़े का मृग नाम मात्र से हाथी और मृगा है, उनमें हाथी और मृग के गुण तथा क्रिया नहीं होती उसी प्रकार अध्ययन से शून्य भी ब्राह्मण नाम मात्र का ब्राह्मण है ॥२४॥

ग्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्जलः ।
यथा हुतमनग्नौ च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२५॥

---

१. 'तेषां वै' इति । २. 'दन्ता' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस प्रकार निर्जन (सूना) ग्राम, जलरहित कूप तथा अग्नि के बिना होम व्यर्थ है उसी प्रकार मन्त्ररहित ब्राह्मण भी व्यर्थ हो है ।।२५।।

यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूषराऽफला ।
यथा चाऽज्ञेऽफलं दानं तथा विप्रोऽनृचोऽफलः ।।२६।।

जिस प्रकार स्त्रियों के लिए नपुंसक निष्फल है, बीज के लिए ऊसर भूमि निष्फल है तथा मूर्ख में दान निष्फल है, उसी प्रकार वेदरहित ब्राह्मण भी निष्फल है ।।२६।।

चित्रकर्म यथाऽनेकैरङ्गैरुन्मील्यते शनैः ।
ब्राह्मण्यमपि तद्वद्धि[1] संस्कारैर्मन्त्रपूर्वकैः ।।२७।।

जिस प्रकार अनेक रंगों से निर्मित चित्रकर्म (चित्रकारी) उद्दीप्त होता है उसी प्रकार अनेक संस्कारों से ब्राह्मणत्व (ब्राह्मणोचित गुण, कर्म तथा स्वभाव) भी प्रस्फुटित होता है ।।२७।।

प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः ।
ते द्विजाः पापकर्माणः समेता नरकं ययुः ।।२८।।

नाममात्र (विद्या और तप से विहीन केवल योनिमात्र) के ब्राह्मण जो भी प्रायश्चित्त की व्यवस्था देते हैं वे पापी कहे जाते हैं। ऐसे सभी लोग नरक में गिरते हैं ।।२८।।

ये पठन्ति द्विजा वेदं पञ्चयज्ञरताश्च ये ।
त्रैलोक्यं तारयन्त्येते पञ्चेन्द्रियरता अपि ।।२९।।

जो ब्राह्मण वेदों का स्वाध्याय करते हैं और पञ्चयज्ञ करते हैं वे ज्ञानकर्मा पञ्चेन्द्रियों में रत होने पर भी तीनों लोकों को तारने में समर्थ होते हैं । २९।।

सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः ।
तथा च वेदविद्विप्रः सर्वभक्षोऽपि दैवतम् ।।३०।।

१ 'तद्विद्धि' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जिस प्रकार श्मशान में भी जलती हुई अग्नि समस्त वस्तुओं को जला देने में समर्थ होती है तथा उसके देवत्व का नाश नहीं होता उसी प्रकार वेदज्ञ ब्राह्मण सर्वभक्षी होते हुए भी देवता ही है ॥३०॥

अमेध्यानि तु सर्वाणि प्रक्षिप्यन्ते यथोदके ।
तथैव किल्बिषं सर्वं प्रक्षिपेच्च द्विजानले ॥३१॥

जिस प्रकार अपवित्र वस्तु जल में डालने से पवित्र हो जाती है, उसी प्रकार ब्राह्मणरूपी अग्नि में भी शुद्धि के लिए अपना पाप प्रकट कर देना चाहिए ॥३१॥

गायत्रीरहितो विप्रः शूद्रादप्यशुचिर्भवेत् ।
गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः सम्पूज्यन्ते जनैर्द्विजाः ॥३२॥

जो ब्राह्मण गायत्री को नहीं जानता वह शूद्र से भी अपवित्र होता है। परन्तु जो गायत्री और ब्रह्म तत्त्व को जाननेवाला है वह संसार में लोगो से पूजित होता है ॥३२॥

दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो न तु शूद्रो जितेन्द्रियः ।
कः परित्यज्य गां दुष्टां दुहेच्छीलवतीं खरीम् ? ॥३३॥

शीलरहित भी ब्राह्मण पूजा के योग्य होता है। पर शूद्र कितना भी जितेन्द्रिय हो, तो वह पूजा के योग्य नहीं होता। जिस प्रकार लोग शीलरहित गौ को दुहते हैं, पर सीधी गदही को कोई नहीं दुहता ॥३३।

धर्मशास्त्ररथाऽऽरूढा वेदखड्गधरा द्विजाः ।
क्रीडार्थमपि यद् ब्रूयुः स धर्मः परमः स्मृतः ॥३४॥

धर्मशास्त्ररूपी रथ पर बैठे हुए वेदरूपी तलवार को धारण किये हुए ब्राह्मण विनोद के लिए भी जो कुछ कहते हैं, वह भी उत्कृष्ट धर्म समझना चाहिए ॥३४॥

चातुर्वैद्योऽविकल्पी च अङ्गविद्धर्मपाठकाः ।
त्रयश्चाश्रमिणो मुख्याः पर्षदेशा दशावरा ॥३५॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चारों वेदों को जाननेवाले अविकल्पी अर्थात् शास्त्र में सन्देह न करनेवाले, वेदांग एवं धर्मशास्त्र के पढ़ने-पढ़ानेवाले, इनके एक की भी परिषद् कही जाती है। मुख्य रूप से क्रमशः तीनों आश्रमों में निवास करनेवाले देश अथवा उससे अधिक संख्या की भी परिषद् हो सकती है ॥३५॥

राज्ञश्चाऽनुमते स्थित्वा प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
स्वयमेव न कर्तव्यं कर्तव्या स्वल्पनिष्कृतिः ॥३६॥

ब्राह्मण राजा के आज्ञानुसार ही प्रायश्चित्त की व्यवस्था दे। स्वयं इच्छानुसार कुछ भी न बतलावे। यदि छोटा प्रायश्चित्त हो तो उसे स्वयं इच्छानुसार भी बता सकता है ॥३६॥

ब्राह्मणांस्तानतिक्रम्य राजा कर्तुं [1]यदिच्छति ।
तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमनुगच्छति ॥३७॥

यदि राजा धर्मशास्त्रज्ञ ब्राह्मणों का अपमान कर स्वयं प्रायश्चित्त कराना चाहता है, तो पापी पुरुष का पाप सौगुना होकर स्वयं राजा को लगता है। ३७॥

प्रायश्चित्तं सदा दद्याद् देवतायतनाग्रतः ।
आत्मकृच्छ्रं ततः कृत्वा जपेद् वै वेदमातरम् ॥३८॥

ब्राह्मण किसी वेद-मन्दिर के सामने प्रायश्चित्त की व्यवस्था दे। तदनन्तर प्रायश्चित्त देने के कारण आत्मकृच्छ्र कर वेदमाता गायत्री का यथाशक्ति जप करे ॥३८॥

स-शिखं वपनं कृत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ।
गवां मध्ये वसेद् रात्रौ दिवा गाश्चाऽप्यनुव्रजेत् ॥३९॥

गोहत्यारों को क्या करना चाहिए? इसको कहते हैं—हत्यारा शिखा सहित शिर को मुण्डन करावे, तीनों काल स्नान करे। रात्रि में

१. 'यदीच्छति' इति पा०।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोशाला में शयन करे, फिर दिन में गौओं के पीछे-पीछे चले ॥३९॥

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम् ।
न कुर्वीताऽऽत्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥४०॥

गरमी, वर्षा, शीत अथवा वेग से वायु के बहने पर भी शक्ति के अनुसार जब तक गौओं की रक्षा का प्रबन्ध न कर ले तब तक स्वयं भी अपनी रक्षा के लिए कोई उपाय न करे ॥४०॥

आत्मनो यदि वाऽन्येषां गृहे क्षेत्रे खलेऽथवा ।
भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥४१॥

गौ यदि अपने घर, खेत अथवा खलिहान में अन्नादि खा रही हो अथवा किसी दूसरे के घर, खेत-खलिहान में खा रही हो। या अपने बछड़े को दूध पिलाती हो, फिर भी किसी से न कहे ॥४१॥

पिबन्तीषु पिबेत्तोयं संविशन्तीषु संविशेत् ।
पतितां पङ्कमग्नां[१] वा सर्वप्राणैः समुद्धरेत् ॥४२॥

जब गाय जल पीये तो स्वयं भी जल पीये। गाय यदि सोवे तो स्वयं भी सोवे या बैठे। यदि गाय कहीं गिर पड़ी हो अथवा कीचड़ में फँस गयी हो, तो प्राणों की बाजी लगाकर उसका उद्धार करे ॥४२॥

ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत् ।
मुच्यते ब्रह्महत्याया गोप्ता [२]गोर्ब्राह्मणस्य च ॥४३॥

ब्राह्मण अथवा गौ की रक्षा के लिए जो अपने प्राणों का त्याग करता है वह ब्रह्महत्या के भी पाप से छूट जाता है तथा गौ और ब्राह्मण की रक्षा कर जो जीवित भी रहता है वह भी ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है ॥४३॥

---

१ 'पङ्कलग्ना' इति पा० । २. 'गोब्राह्मणस्य' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गोवधस्याऽऽनुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत् ।
प्राजापत्यं ततः कृच्छ्रं [1]विभजेत् तच्चतुर्विधम् ॥४४॥

गोवध के अनुरूप ही प्राजापत्य व्रत की व्यवस्था देनी चाहिए। इस प्रकार प्राजापत्य तथा कृच्छ्र का चार भाग करना चाहिए ॥४४॥

एकाहमेकभक्ताशी एकाहं नक्तभोजनः ।
अयाचितस्यैकमहरेकाहं मारुताशनः ॥४५॥

एक दिन एक समय केवल दिन में, दूसरे दिन केवल रात्रि में भोजन करे। तीसरे दिन अयाचित (बिना माँगे हुए, जो स्वयं अपने पास आ जाये) अन्न एक बार खाये, पुनः चौथे दिन केवल वायु पीकर रहे। यह प्राजापत्य कृच्छ्र का प्रथम पाद कहा जाता है ॥४५॥

दिनद्वयं चैकभक्तो द्विदिनं नक्तभोजनः ।
दिनद्वयमयाची स्याद् द्विदिनं मारुताशनः ॥४६॥

दो दिन तक केवल दिन में एक बार, फिर दो दिन तक केवल रात्रि में एक बार, फिर दो दिन तक अयाचित अर्थात् एक बार भोजन करे। तदनन्तर दो दिन तक केवल वायु के सहारे रहे। यह प्राजापत्य का दो पाद कहा जाता है ॥४६॥

त्रिदिनं चैकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः ।
दिनत्रयमयाची स्यात् त्रिदिनं मारुताशनः ॥४७॥

तीन दिन तक केवल दिन में एक बार, फिर तीन दिन तक केवल रात्रि में एक बार, फिर तीन दिन तक अयाचित अन्न केवल एक बार भोजन करे, फिर तीन दिन तक केवल वायु के सहारे रहे। यह प्राजापत्य कृच्छ्र का तीन पाद कहा जाता है ॥४७॥

चतुरहं त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः ।
चतुर्दिनमयाची स्याच्चतुरहं मारुताशनः ॥४८॥

---

१. 'विभजेत चतुर्विधम्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चार दिन केवल दिन में एक बार, फिर चार दिन तक रात्रि में केवल एक बार, फिर चार दिन तक अयाचित अन्न केवल एक बार भोजन करे। फिर चार दिन तक वायु के सहारे रहे। यह प्राजापत्य कृच्छ्र का चारों पाद (सम्पूर्ण रूप) कहा जाता है ॥४८॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
विप्राणां दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद् द्विजः ॥४९॥

प्रायश्चित्त कर लेने पर, ब्राह्मणों को भोजन करावे। उन्हें दक्षिणा देवे, फिर पवित्र मन्त्रों एवं पवमान सूक्तों का जप करे ॥४९॥

ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघ्नः [1]शुद्धो न संशयः ॥५०॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

ब्राह्मणों को भोजन कराने मात्र से ही गोहत्या करनेवाला व्यक्ति शुद्ध हो जाता है, इसनें सन्देह नहीं ॥५०॥

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' भाषाटीकासहित पाराशरीय धर्मशास्त्र में अष्टम अध्याय समाप्त ॥ ८ ॥

*

९. नवमोऽध्यायः

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद् रोध-बन्धयोः ।
तद्वधं तु न तं विद्यात् कामाऽकामकृतं तथा ॥ १ ॥

यदि गायों की रक्षा के उद्देश्य से कोई व्यक्ति उसे किसी घेरे या अहाते में रोककर बांध ले और इस कारण गाय की मृत्यु हो जाय तो वह मनुष्य गोवध का भागी नहीं होता। इसके अतिरिक्त कामाकामकृत् अर्थात् भूलवश या धोखे से होनेवाली हत्या को वध कहते हैं ॥१॥

---

१. 'शुद्धयेन्न' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दण्डादूर्ध्वं यदन्येन प्रहाराद् यदि पातयेत् ।
प्रायश्चित्तं तदा प्रोक्तं द्विगुणं गोवधे चरेत् ॥ २ ॥

हाथ के अँगूठे-जैसे मोटे दण्ड या लाठी आदि के आघात से गोवध हो जाने पर दुगुना प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥२॥

रोध-बन्धन-योक्त्राणि घातश्चेति चतुर्विधम् ।
एकपादं चरेद् रोधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत् ॥ ३ ॥

किसी गाय को रोक रखने, बाँध लेने, जोतने और मारने से गोवध होता है। रोक लेने मात्र से ही यदि गाय की मृत्यु हो जाय तो चौथाई व्रत करने का विधान है और बन्धन के कारण होनेवाले गोवध में आधा व्रत करना उचित है ॥३॥

योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने ।
[1]गोवाटे वा गृहे वाऽपि दुर्गे वाऽप्यसमस्थले ॥ ४ ॥

जोतने के समय गोवध होने से तीन चौथाई और मार डालने पर सम्पूर्ण रूप से प्रायश्चित्त करना चाहिए। गोशाला, घर, किला और असमतल भूमि, ॥४॥

नदीष्वथ समुद्रेषु त्वन्येषु च नदीमुखे ।
दग्धदेशे मृता गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥ ५ ॥

नदी, समुद्र, नदियों के उद्गम स्थल या अग्नि से घिरे हुए स्थान में रोक लेने से गाय की मृत्यु हो जाय तो उसे 'रोध' की संज्ञा दी जाती है ॥५॥

योक्त्र-दामक-दोरैश्च कण्ठाभरण-भूषणैः ।
गृहे वाऽपि वने वाऽपि बद्धा स्याद् गौर्मृता यदि ॥६॥

हल जोतने की लकड़ी, गाड़ी के जुए, रस्सी, गले में पड़े हुए आभूषण अर्थात् कण्ठी, माला आदि से बँधी हुई गौ का मरण हो जाय

१. 'गोचरे' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तो वह स्थान घर में हो या घर के बाहर वनादि में हो ॥६॥

तदेव बन्धनं विद्यात् कामाऽकामकृतं च यत् ।
हले वा शकटे पंक्तौ पृष्ठे वा पीडितो नरैः ॥ ७ ॥

तो इसी को 'बन्धन' और 'कामाकामकृत्' कहते हैं। हल, सग्गड़, गाड़ी और कतार में बँधे अथवा पीठ पर लदे हुए भार के कारण मनुष्य से पीड़ित होकर, ॥७॥

गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्वधः ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चेतनो वाऽप्यचेतनः ॥ ८ ॥

बैल की मृत्यु हो जाय तो उस बन्धन को शास्त्रों में 'योक्त्र' कहा गया है। मत्त (धन से), प्रमत्त (सुरापान आदि से) और उन्मत्त (भूत-प्रेतादि की बाधा), यदि चेतन या अचेतन अवस्था में, ॥८॥

कामाऽकामकृतक्रोधी दण्डैर्हन्यादथोपलैः ।
प्रहता वा मृता वाऽपि तद्धि हेतुर्निपातने ॥ ९ ॥

इच्छा अथवा अनिच्छापूर्वक, क्रोध के वशीभूत होकर, डण्डे या पत्थर से मार डाले तो इसी को 'निपातन' और वध करना कहते हैं ॥९॥

अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु बाहुमात्रः प्रमाणतः ।
आर्द्रस्तु स-पलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते ॥१०॥

अँगूठे के बराबर मोटी, हाथ के बराबर लम्बी, पत्तीदार गीली लकड़ी को 'दण्ड' कहते हैं ॥१०॥

मूर्च्छितः पतितो वाऽपि दण्डेनाऽभिहतः स तु ।
उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पञ्च सप्त दशैव वा ॥११॥

दण्ड के प्रहार से आहत पशु मूर्च्छित हो जाय अथवा भूमि पर गिर पड़े या फिर से उठकर पांच, सात या दस पग चल पड़े ॥११॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वाऽपि पिबेद् यदि ।
पूर्वं व्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१२॥

अथवा तृणादि का भक्षण कर ले या पानी पी ले और पहले से ही रोगग्रस्त हो तो उस पशु के मरने पर किसी प्रकार का प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता है ॥१२॥

पिण्डस्थे पादमेकं तु द्वौ पादौ गर्भसम्मिते ।
पादोनं व्रतमुद्दिष्टं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१३॥

गाय का पन्द्रह दिन का गर्भपात हो जाने से सम्पूर्ण व्रत का चतुर्थांश, एक मास का गर्भ गिराने में आधा और सात मास से पूर्व का गर्भ गिराने पर तीन चौथाई व्रत करने का विधान है ॥१३॥

पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च ।
त्रिपादे तु शिखावर्जं स-शिखं तु निपातने ॥१४॥

चौथाई व्रत करने में शरीर के रोम, अर्ध व्रत में रोम, मूँछ और दाढ़ी, तीन चौथाई में शिखा के अतिरिक्त सम्पूर्ण शरीर का मुण्डन और निपातन अर्थात् वध करने पर शिखा के सहित समस्त शरीर का मुण्डन कराना चाहिए ॥१४॥

पादे वस्त्रयुगं चैव द्विपादे कांस्यभाजनम् ।
त्रिपादे गोवृषं दद्याच्चतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥१५॥

चतुर्थांश व्रत करने पर ब्राह्मण को दक्षिणा-स्वरूप जोड़ा वस्त्र, आधा व्रत करने पर काँसे की धातु का निर्मित पात्र, तीन चौथाई व्रत में बैल और सम्पूर्ण व्रत में दो गौ का दान करना चाहिए ॥१५॥

निष्पन्नसर्वगात्रस्तु दृश्यते वा स-चेतनः ।
अङ्ग-प्रत्यङ्ग-सम्पूर्णो द्विगुणं गोव्रतं चरेत् ॥१६॥

जब गर्भस्थ पशु में प्राण का संचार हो गया हो और उसके सम्पूर्ण अंगों का गठन हो गया हो तो उस समय गौ का घात करने से दुगुनी गोहत्या का व्रत करना उचित है ॥१६॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

पाषाणेनाथ दण्डेन गावो येताऽभिघातिताः ।
शृङ्गभङ्गे चरेत् पादं द्वौ पादौ नेत्रघातने ॥१७॥

किसी व्यक्ति के द्वारा पत्थर या डण्डे से आघात करने पर यदि गाय का सींग टूटकर गिर जाय, या उसकी आँखें फूट जायें, तो सींग गिरने पर चौथाई व्रत और नेत्र-भंग होने पर आधा व्रत करना चाहिए ॥१७॥

लाङ्गूले पादकृच्छ्रं तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने ।
त्रिपादं चैव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने ॥१८॥

पूँछ टूट जाने पर पादकृच्छ्र व्रत करे, हड्डी टूटने पर आधा कृच्छ्र, कान टूटने पर तीन चौथाई व्रत और मरण होने पर सम्पूर्ण व्रत करना उचित है ॥१८॥

शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च ।
यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१९॥

किसी गाय का सींग टूटने, हड्डी टूटने या कमर टूटने पर भी यदि वह छः मास तक जीवित रह जाय तो उसके लिए किसी प्रकार का प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं है ॥१९॥

व्रण-भङ्गे च कर्त्तव्यः स्नेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना ।
यवसश्चोपहर्त्तव्यो यावद् दृढबलो भवेत् ॥२०॥

यदि अपने हाथ से गाय का फोड़ा फूट जाय तो उसमें जब तक गाय स्वाभाविक अवस्था में न हो जाय तब तक घी या तेल लगाते रहना चाहिए और भोजन के लिए हरा चारा या घास देते रहना चाहिए ॥२०॥

यावत्सम्पूर्ण-सर्वाङ्गस्तावत् तं पोषयेन्नरः ।
गोरूपं ब्राह्मणस्याऽग्रे नमस्कृत्वा विसर्जयेत् ॥२१॥

१. 'नैव' इति क्वचित्पुस्तके ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जब तक उस गाय का सम्पूर्ण अंग पूरा न हो जाय, तब तक उसकी सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए। तत्पश्चात् किसी ब्राह्मण को नमस्कार करके उसे अर्पित कर देना उचित है ॥२१॥

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत् तदा।
गोघातकस्य तस्याऽर्द्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२॥

सम्पूर्ण अंग ठीक होने से पहले ही यदि उस गाय की मृत्यु हो जाय तो हत्यारे को आधा प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥२२॥

काष्ठ-लोष्टक-पाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्।
व्यापादयति यो गां तु तस्य शुद्धिं विनिर्दिशेत् ॥२३॥

काठ, इंट, पत्थर या शस्त्र से सज्जित मनुष्य जब बलात् गाय का वध करे तो उसकी शुद्धि इस प्रकार कही गयी है—॥२३॥

चरेत् सान्तपनं काष्ठे प्राजापत्यं तु लोष्टके।
तप्तकृच्छ्रं तु पाषाणे शस्त्रे चैवाऽतिकृच्छ्रकम् ॥२४॥

काठ से मारने पर सान्तपन नामक व्रत, इंट से प्राजापत्य, पत्थर से तप्तकृच्छ्र और शस्त्रों द्वारा आघात करने में अधिकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए ॥२४॥

पञ्च सान्तपने गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः।
तप्तकृच्छ्रे भवन्त्यष्टावतिकृच्छ्रे त्रयोदश ॥२५॥

सान्तपन नामक व्रत में पाँच, प्राजापत्य में तीन, तप्तकृच्छ्र में आठ और अतिकृच्छ्र में तेरह गोदान करने का विधान बतलाया गया है ।२५॥

प्रमापणे प्राणभृतां दद्यात्तत्प्रतिरूपकम्।
तस्याऽनुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः ॥२६॥

महर्षि मनु ने कहा है कि जिस प्रकार के पशु का हनन किया गया हो, पशुपालक को बदले में वैसा ही पशु देना चाहिए अथवा

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

किन्हीं दो मनुष्यों द्वारा मृत पशु के किये गये मूल्यांकन का मूल्य चुका देना चाहिए ॥२६॥

अन्यत्राङ्कन-लक्ष्मभ्यां वाहने मोचने तथा ।
सायं सङ्गोपनार्थं च न दुष्येद् रोध-बन्धयोः ॥२७॥

वृषोत्सर्ग आदि के समय शस्त्र द्वारा अंकन करने तथा उस अंकन के लिए गोमय के चिह्न बनाने, बोझ लादने, बोझ उतारने और सायंकाल पशु के रक्षण के निमित्त रोध और बन्ध करने पर मरनेवाली गाय का कोई दोष नहीं माना जाता ॥२७॥

अतिदाहेऽतिवाहे च नासिकाभेदने तथा ।
नदी-पर्वतसञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२८॥

पशु को बहुत अधिक दागने, लादने, जोतने, नाक छेदने अथवा नदी या पर्वतस्थल में चराने पर, गाय का मरण होने पर प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥२८॥

अतिदाहे चरेत् पादं द्वौ पादौ वाहने चरेत् ।
नासिक्ये पादहीनं तु चरेत् सर्वं निपातने ॥२९॥

अत्यधिक दागने के कारण होनेवाली मृत्यु में चतुर्थांश, बहुत अधिक भार लादने से होनेवाली मृत्यु में आधा, नाथने में तीन चौथाई और वध में पूरा प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥२९॥

दहनात्तु विपद्येत अनड्वान् योक्त्रयन्त्रितः ।
उक्तं पराशरेणैव ह्येकं पादं यथाविधि ॥३०॥

घर में आग लगने पर जुए में जुता हुआ बैल यदि मर जाय तो उसके प्रायश्चित्त में महर्षि पराशर ने चौथाई व्रत करने का विधान किया है ॥३०॥

रोधनं बन्धनं चैव भारप्रहरणं तथा ।
दुर्गप्रेरण-योक्त्रं च निमित्तानि वधेषु[1] षट् ॥३१॥

---

१. 'वधस्य' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अवरोध (रोकना), बन्धन, भार, आघात, बीहड़ स्थान में ले जाना और जुए में जोतना—ये छः कर्म वध के कारण होते हैं ॥३१॥

बन्ध-पाश-सुगुप्ताङ्गो म्रियते यदि गोपशुः ।
भवने तस्य पापी स्यात् प्रायश्चित्तार्द्धमर्हति ॥३२॥

यदि किसी के घर में गाय या बैल बन्धन या फन्दे में बँधा हुआ ही मर जाय तो वह भी पाप का भागी होता है। उसे दोष निवारण के लिए आधा प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥३२॥

न नारिकेलैर्न च शाणवालै-
र्न चाऽपि मौञ्जैर्न च वल्कशृङ्खलैः ।
एतैस्तु गावो न निबन्धनीया
बंद्ध्वाऽपि[1] तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३॥

किसी गाय को नारियल की बनी रस्सी, सन, बाल, मूँज और वृक्ष की छाल के रस्से से अथवा लोहे की जंजीर से नहीं बाँधना चाहिए। यदि उपर्युक्त वस्तुओं से बाँधना आवश्यक ही हो तो उसे काटने का शस्त्र लेकर तत्पर रहना चाहिए ॥३३॥

कुशैः काशैश्च बध्नीयाद् गोपशुं दक्षिणामुखम् ।
पाशलग्नाग्निदग्धासु[2] प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३४॥

कुश और कास की रस्सी से गाय को दक्षिण मुख बाँधने पर यदि वह जल मरे या फन्दा लगा ही रह जाय तो भी किसी प्रकार का दोष नहीं लगता है ॥३४॥

यदि तत्र भवेत् काष्ठं प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ।
जपित्वा पावनीं देवीं मुच्यते तत्र किल्बिषात् ॥३५॥

कुश या कास की रस्सियों में लकड़ी पिरोकर यदि गाय को बाँधा गया हो तो उसका प्रायश्चित्त करना पड़ता है। इसमें गायत्री

१. 'बद्ध्वा तु' इति । २. 'दग्धेषु' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

देवी का एक सौ आठ बार जप करने से मनुष्य के पाप का मोचन होता है ॥३५॥

प्रेरयन् कूप-वापीषु वृक्षच्छेदेषु पातयन् ।
गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोवधम् ॥३६॥

जब किसी कुएँ, तालाब और बड़े-बड़े वृक्ष काटने के स्थान में गाय को ले जाय अथवा किसी कसाई के हाथ उसे विक्रय कर दे तो गोवध करने का प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥३६॥

आराधितस्तु यः कश्चिद् भिन्नकक्षो यदा भवेत् ।
श्रवणं हृदयं भिन्नं मग्नो वा कूपसङ्कटे ॥३७॥

यत्नपूर्वक बलवान् बनाकर किसी बैल को दौड़ाने पर जब वह कक्षहीन हो जाय अथवा किसी कुएँ आदि में गिरने से उसके कान और हृदय विदीर्ण हो जायें, ॥३७॥

कूपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ग्रीव-पादयोः ।
स एव म्रियते तत्र त्रीन् पादांस्तु समाचरेत् ॥३८॥

कुएँ से निकालने के समय यदि गरदन या पैर टूट जाय तो उस बैल के मरने पर तीन चौथाई प्राजापत्य नामक व्रत करने का विधान बतलाया गया है ॥३८॥

कूपखाते तटाबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च ।
पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३९॥

यदि कोई बैल पुराने कुएँ के गड्ढे, बाँध, पुल, पौसरे और पानी के गड्ढे में डूबकर मर जाय तो उसके लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता ॥३९॥

कूपखाते तटाखाते [1]दीर्घीखाते तथैव च ।
स्वल्पेषु धर्मखातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४०॥

---
१. 'दीर्घखाते' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कूपखात, तटाखात, दीर्घखात और घर्मखात—इन गड्ढों में गिरकर मृत्यु को प्राप्त होने पर कोई प्रायश्चित्त नहीं करना पड़ता ॥४०॥

वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति ।
स्वकार्यगृहखातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४१॥

घर के दरवाजे पर, गोशाला में अथवा गृहनिर्माण के लिए किये गये गड्ढे में गिरकर पशु के मरने पर प्रायश्चित्त करना पड़ता है ॥४१॥

निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्याघ्रहतेषु च ।
अग्नि-विद्युद्विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ।४२॥

रात में रोकने या बाँधने से, सर्प या सिंह आदि हिंसक जन्तुओं के द्वारा मारे जाने पर, अग्निकाण्ड होने अथवा बिजली गिरने से मृत पशुओं के निमित्त किसी प्रायश्चित्त का विधान नहीं है ॥४२॥

ग्रामघाते शरौघेण वेश्मभङ्गनिपातने ।
अतिवृष्टिहतानां च प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४३॥

शत्रु द्वारा ग्राम के घेरने, शत्रु द्वारा चलाये हुए बाणों से बिधने, मकान के ध्वस्त होने अथवा मूसलधार वृष्टि के कारण पशुमरण होने पर प्रायश्चित्त नहीं किया जाता है ॥४३॥

संग्रामे [1]प्रहतानां च ये दग्धा वेश्मकेषु च ।
दावाग्नि ग्रामघातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४४॥

युद्धस्थल में, दावानल की लपेट में आये हुए, घर में जलने और सम्पूर्ण गांव के विध्वंस होने पर मृत गाय के लिए कोई प्रायश्चित्त नहीं किया जाना चाहिए ॥४४॥

यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्भविमोचने ।
यत्ने कृते विपद्येत प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४५॥

---

१. '-ऽपहृताना' इति पा० ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

औषध पिलाने के निमित्त अथवा उदरस्थ मृत बछड़े को निकालने के लिए बँधी हुई गाय के मरने पर कोई दोष नहीं लगता है ॥४५॥

व्यापन्नानां बहूनां च बन्धने रोधनेऽपि वा ।
भिषङ्मिथ्योपचारे[1] च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥४६॥

बाँधने या रोकने से अथवा पशु-चिकित्सक के गलत उपचार के द्वारा यदि बहुत सी गायों का निधन हो जाय तो प्रायश्चित्त करना आवश्यक होता है ॥४६॥

गो-वृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः ।
अनिवारयतां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत् ॥४७॥

यदि गाय या बैल किसी कुएँ आदि में या और किसी प्रकार मर जायें और दर्शकों द्वारा उनको बचाने का प्रयास न किया जाय तो उसका प्रायश्चित्त लगता है ॥४७॥

एको हतो यैर्बहुभिः समेतैर्न ज्ञायते यस्य हतोऽभिघातात् ।
दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता निवर्तनीयो नृपसन्नियुक्तः ॥४८॥

जब कई व्यक्तियों ने एक साथ मिलकर सम्मिलित वध किया हो और इस बात का निश्चय न हो सके कि किसके प्रहार से गोहत्या हुई है, तो राज-द्वारा नियुक्त मनुष्य को चाहिए कि हत्यारों को शपथ दिलाकर मारनेवाले का निर्णय करे और सबके समक्ष उसे अलग करके सब लोगों को दिखला दे ॥४८॥

एका चेद् बहुभिः काचिद् दैवाद् व्यापादिता भवेत्[2] ।
पादं पादं तु हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४९॥

यदि एक गाय को किसी मनुष्य ने मारा हो तो उन सब व्यक्तियों को अलग-अलग सम्पूर्ण व्रत का चतुर्थांश प्रायश्चित्त के रूप में करना चाहिए ॥४९॥

---

१. '-मिथ्यापचारेण' इति पा० । '-मिथ्यापचारे' इति । २. 'क्वचित्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हते तु रुधिरं दृश्यं व्याधिग्रस्तः कृशो भवेत् ।
लाला भवति [1]दष्टेषु एवमन्वेषणं भवेत् ॥५०॥

गाय की मृत्यु के कारण का निश्चय इस प्रकार करना चाहिए— यदि रक्त दिखाई पड़े तो वध द्वारा, दुर्बलता के कारण मृत्यु होने से बीमारी द्वारा और मुँह से झाग या फेन निकलने पर सपदंशन द्वारा मृत्यु का कारण समझना चाहिए। ५०॥

ग्रासार्थं चोदितो वाऽपि अध्वानं नैव गच्छति ।
मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता ॥५१॥

खाने के लिए प्रोत्साहित करने पर भी यदि गाय अपने स्थान से न हिले तो उसे क्लेशित समझना चाहिए। ऐसा सर्वशास्त्रवेत्ता मनु ने बतलाया है ॥५१॥

प्रायश्चित्तं तु तेनोक्तं गोघ्नश्चान्द्रायणं चरेत् ।
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥५२॥

उन्होंने गोहत्या को प्रायश्चित्त के रूप में चान्द्रायण नामक व्रत का अनुष्ठान करने का निर्देश किया है और केशों का मुण्डन न करावे पर दुगुने व्रत का विधान बतलाया है ॥५२॥

द्विगुणे व्रत आदिष्टे द्विगुणा दक्षिणा भवेत् ।
राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः ॥५३॥

दुगुना व्रत करने में दक्षिणा भी दुगुनी देनी पड़ती है। राजा, राजपुत्र अथवा बहुश्रुत ब्राह्मण ॥५३।

अकृत्वा वपनं तेषां प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ।
यस्य न द्विगुणं दानं केशश्च परिरक्षितः ॥५४॥

यदि गोहत्या में हत्यारे का सिर मुड़ाये बिना दुगुना प्रायश्चित्त न करे ॥५४॥

---

१. 'द्रंष्ट्रेषु' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तत्पापं तस्य तिष्ठेत [1]वक्ता च नरकं व्रजेत् ।
यत्किञ्चित् क्रियते पापं सर्वं केशेषु तिष्ठति ॥५५॥

तो वह स्वयं पातकी होता है और बतलानेवाला नरकगामी होता है, क्योंकि सभी प्रकार के किये हुए पाप केशों में विद्यमान रहते हैं ॥५५॥

सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलद्वयम् ।
एवं नारी-कुमारीणां शिरसा मुण्डनं स्मृतम् ॥५६॥

विवाहिता अथवा अविवाहिता स्त्री के मुण्डन में केश के ऊपरी सिरे को पकड़कर दो-दो अँगुल बाल काट लेना चाहिए ॥५६॥

न स्त्रियाः केशवपनं न दूरे [2]शयनाऽऽसनम् ।
न च गोष्ठे वसेद् रात्रौ न दिवा गा अनुव्रजेत् ॥५७॥

स्त्रियों के समस्त केशों को मूँड़ना, अलग होकर सोना, बैठना, गोशाले में रहकर रात बिताना और दिन में गायों के झुण्ड के पीछे-पीछे घूमना—ये सब कार्य वर्जित होते हैं । ५७॥

नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशेषतः ।
न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत् ॥५८॥

नदियों के संगमस्थान, विशेषतः वनों में वास तथा मृगछाला आदि को धारण न कराकर व्रत का अनुष्ठान कराना चाहिए ॥५८॥

त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ।
बन्धुमध्ये व्रतं तासां कृच्छ्र-चान्द्रायणादिकम् ॥५९॥

त्रिकाल स्नान, देवताओं की अर्चना और अपने बन्धुवर्गों में निवास करना ही स्त्रियों का कृच्छ्र-चान्द्रायण व्रत माना गया है ॥५९॥

गृहेषु सततं तिष्ठेच्छुचिर्नियममाचरेत् ।
इह यो गोवधं कृत्वा प्रच्छादयितुमिच्छति ॥६०॥

---

१. 'त्यक्त्वा' इति पा० । २. 'शयनाऽशनम्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घर में सदैव पवित्र रहकर स्त्रियाँ नियमपूर्वक आचरण करें। जो गोघातक अपने गोवध को संसार की दृष्टि में छिपाने का प्रयास करता है ॥६०॥

स याति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम् ।
विमुक्तो नरकात्तस्मात् मर्त्यलोके प्रजायते ॥६१॥

वह निश्चय ही घोर कालसूत्र नामक नरक में वास करता है। उस नरक से मुक्त होनेके बाद जब वह पुनः मृत्युलोक में आता है तब ॥ ६१ ॥

क्लीबो दुःखी च कुष्ठी च सप्तजन्मनि वै नरः ।
तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्मं सततं चरेत् ॥६२॥

वह प्राणी नपुन्सक, दुखी और कोढ़ी होकर सात जन्म तक कष्ट भोगता रहता है। इसलिए अपने किये हुए पापों को गुप्त न रखकर उन्हें सब लोगों पर प्रकट करके सदैव धर्माचरण में तत्पर रहना चाहिए ॥६२॥

स्त्री-बाल-भृत्य-गो-विप्रेष्वतिकोपं विवर्जयेत् ॥६३½॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे गोरक्षणार्थे गोविपत्तिप्रायश्चित्त
नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

स्त्री, बालक, सेवक, गौ और ब्राह्मण के ऊपर कभी भी अत्यन्त क्रोध नहीं करना चाहिए ॥ ६३½ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका में पाराशरप्रोक्त धर्मशास्त्र में
नवाँ अध्याय समाप्त ॥ ९ ॥

❀

१०. दशमोऽध्यायः

चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु हितां वक्ष्यामि निष्कृतिम् ।
अगम्यागमने चैव [1]शुद्धौ चान्द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

---

१. 'शुद्धयै' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अब मैं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र -इन चारों वर्णों की शुद्धि का उपाय बतलाऊँगा। अपनी पत्नी के अतिरिक्त अन्य अगम्या स्त्रियों से गमन करने पर चान्द्रायण व्रत से शुद्धि होती है ॥ १ ॥

एकैकं ह्रासयेद् ग्रासं कृष्णे शुक्ले च वर्द्धयेत् ।
अमावास्यां न भुञ्जीत ह्येष चान्द्रायणो विधिः ॥ २ ॥

चान्द्रायण व्रत की विधि इस प्रकार है: कृष्णपक्ष में भोजन का क्रमशः एक-एक ग्रास घटाकर शुक्लपक्ष में एक-एक कौर बढ़ाते रहना चाहिए और अमावास्या के दिन निराहार व्रत करना चाहिए ॥ २ ॥

कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासं च परिकल्पयेत् ।
अन्यथा [1]जातदोषेण न धर्मो न च शु[2]द्ध्यति ॥ ३ ॥

भोजन के ग्रास का प्रमाण अण्डे के बराबर होना चाहिए। इसकी मात्रा में कमी-वेशी करने से दोष का भागी होना पड़ता है और शुद्धि नहीं होती ॥ ३ ॥

प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
गोद्वयं वस्त्रयुग्मं च दद्याद् विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ४ ॥

प्रायश्चित्त करने के अनन्तर ब्राह्मण को भोजन कराकर दक्षिणा-स्वरूप दो गाय और एक जोड़ा वस्त्र देना चाहिए ॥ ४ ॥

चाण्डालीं वा श्वपाकीं वा ह्य[3]भिगच्छति यो द्विजः ।
त्रिरात्रमुपवासित्वा[4] विप्राणामनुशासनात् ॥ ५ ॥

जो ब्राह्मण चाण्डाल या श्वपच जाति की स्त्री से मैथुन करता है, उसे चाहिए कि वह ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर, ॥ ५ ॥

स शिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ।
ब्रह्मकूर्चं ततः कृत्वा कुर्याद् ब्राह्मणतर्पणम् ॥ ६ ॥

---

१. 'भावदोषेण' इति। २. 'शुद्ध्यते' इति। ३. 'अनुगच्छति' इति।
४. 'त्रिरात्रमुपवासी च' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

तीन दिन-रात उपवास करे और शिखा सहित सिर मुँड़वाकर प्राजापत्य नामक व्रत का अनुष्ठान करे। इसके अनन्तर ब्रह्मकूर्च नामक व्रत पूरा करके ब्राह्मण को भोजन दे ॥ ६ ।

गायत्रीं च जपेन्नित्यं दद्याद् गोमिथुनद्वयम् ।
विप्राय दक्षिणां दद्याच्छुद्धिमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ७ ॥

तदनन्तर प्रतिदिन गायत्री का पाठ करे और अन्त में ब्राह्मण को दो बैल, दो गाय और दक्षिणा दान करे। इस प्रकार के अनुष्ठान से वह ब्राह्मण निश्चय ही पवित्र हो जाता है ॥ ७ ॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ।
क्षत्रियो वाऽथ वैश्यो वा चाण्डालीं गच्छतोऽपि[1] वा ॥८ ॥

महर्षि पाराशर ने शुद्धि के निमित्त दक्षिणा में दो गायों के दान का निर्देश किया है। यदि क्षत्रिय या वैश्य चाण्डाल की स्त्री से सहवास करे तो ॥ ८ ॥

प्राजापत्यद्वयं कुर्याद् दद्याद् गोमिथु[2]नद्वयम् ।
श्वपाकीं वाऽथ चाण्डालीं शूद्रो वा यदि गच्छति ॥ ९ ॥

उसे चाहिए कि वह दो प्राजापत्य व्रत करके दो गाय और दो बैल दान में देवे। यदि शूद्र जाति का मनुष्य श्वपच या चाण्डाल की पत्नी से मैथुन करे तो ॥ ९ ।

प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं चतुर्गोमिथुनं ददेत् ।
मातरं यदि गच्छेत्तु भगिनीं स्वसुतां तथा ॥१०॥

उसे चाहिए कि प्राजापत्य कृच्छ्र नामक व्रत करके चार-चार की संख्या में गाय और बैल का दान देवे। यदि कोई व्यक्ति मोहासक्त होकर अपनी माता, बहन और पुत्री से सम्भोग कर बैठे ॥ १० ॥

---

१. 'गच्छतो यदि' इति। २. 'गोमिथुनं तथा' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीणि कृच्छ्राणि सञ्चरेत् ।
चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिश्नच्छेदेन शुद्ध्यति ॥११॥

तो तीन-तीन कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रत करके अन्त में जननेन्द्रिय को ही काट डालना चाहिए ॥११॥

मातृष्वसृगमे चैवमात्समेढ्रनिकर्तनम् ।
[1]अज्ञानेन तु यो गच्छेत् कुर्याच्चान्द्रायणत्रयम् ॥१२॥

इसी प्रकार यदि अपनी मौसी (माता की बहन) से सम्भोग करे तब भी उसे जननेन्द्रिय का छेदन कर डालना उचित है। यदि अनजान में समागम हुआ हो तो उसे तीन चान्द्रायण करने के बाद ॥१२॥

दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ।
पितृदारान् समारुह्य मातुराप्तां च भ्रातृजाम् ॥१३॥

दस-दस की संख्या में गाय और बैल का दान करना चाहिए। ऐसा करने से उसकी शुद्धि हो जाती है। विमाता, माता की सहेली, भ्रातृ-तनया, ॥ १३ ॥

गुरुपत्नीं स्नुषां चैव भ्रातृभार्यां तथैव च ।
मातुलानीं स-गोत्रां च प्राजापत्यत्रयं चरेत् ॥१४॥

गुरु-पत्नी, पुत्रवधू (पतोहू), भाई की पत्नी, मामी सगोत्रीय स्त्रियों के साथ मैथुन करने पर तीन प्राजापत्य व्रत का विधान कहा गया है ॥ १४ ॥

गोद्वयं दक्षिणां दत्वा शुद्ध्यते नाऽत्र संशयः ।
पशु-वेश्यादिगमने महिष्युष्ट्री-कपीस्तथा ॥१५॥

तत्पश्चात् दक्षिणा में दो गायों का दान देने से पूर्णरूपेण शुद्धि प्राप्त होती है। पशु, वेश्या, मादा भैंस, ऊँटिन, बन्दरी, ॥ १५ ॥

खरीं च सूकरीं गत्वा प्राजापत्यव्रतं चरेत् ।
गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकां ब्राह्मणे ददेत् ॥१६॥

---

१ 'अज्ञानात्तु' इति । २. 'चान्द्रायणद्वयम्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गधी और सूअर के साथ गमन करने से प्राजापत्य व्रत करना चाहिए। गाय के साथ रमण करने से तीन दिन-रात निरन्तर उपवास करके दक्षिणा में ब्राह्मण को एक गाय देनी चाहिये ॥ १६ ॥

महिष्युष्ट्री-खरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्ध्यति ।
[1]अमरे समरे वाऽपि दुर्भिक्षे वा जनक्षये ॥१७॥

भैंस, ऊँटनी और गधी के साथ एक बार गमन करने से एक दिन तक उपवास करके वह व्यक्ति शुद्धता पा लेता है। डकैती, युद्ध, अकाल, महामारी, ॥ १७ ॥

बन्दिग्राहे भयार्तौ वा सदा स्वस्त्रीं निरीक्षयेत् ।
चाण्डालैः सह सम्पर्कं या नारी कुरुते ततः ॥१८॥

बलपूर्वक दासीकरण करना, राजा और चोर के डर से सदैव अपनी पत्नी की रक्षा करते रहना। चाण्डालों के साथ रमण करनेवाली स्त्री को चाहिए कि, ॥ १८ ॥

विप्रान् दश वरान् कृत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत् ।
आकण्ठसम्मिते कूपे गोमयोदककर्दमे ॥१९॥

वह दश कुलीन ब्राह्मणों के समक्ष अपने किये हुए दोषों को स्वीकार कर ले और किसी कूप या गड्ढे के जल में कण्ठ तक गोबर का कीचड़ बनाकर ॥ १९ ॥

तत्र स्थित्वा निराहारा त्वहोरात्रेण निष्क्रमेत् ।
स-शिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम् ॥२०॥

उसमें दिन-रात निराहार रहकर खड़ी रहे। तत्पश्चात् दूसरे दिन उस गढ़े से बाहर आकर समूचे सिर का मुण्डन करा डाले और यव का भात बनाकर भोजन करे ॥ २० ॥

त्रिरात्रमुपवासित्वा त्वेकरात्रं जले वसेत् ।

---

१. 'डामरे' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रं वा कुसुम फलम् ॥२१॥

इसके बाद तीन दिन तक उपवास करके एक दिन-रात जल में खड़ा रहे। फिर सातवें दिन शंखपुष्पी नामक लता के पंचांग (फल, फूल, मूल, पत्ती आदि) में से किसी एक को लेकर ॥२१॥

सुवर्णं [1]पञ्चगव्यं च क्वाथयित्वा पिबेज्जलम् ।
एकभक्तं चरेत् पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवेत् ॥२२॥

इसके साथ सोना और पंचगव्य मिला ले। फिर उपर्युक्त वस्तुओं को जल में उबालकर उसका काढ़ा तैयार करे और उस काढ़े का पान करे। जब तक पुनः रजस्वला न हो तब तक नियमपूर्वक इस एकभक्त व्रत को करती रहे ॥२२॥

व्रतं चरति तद्यावत्तावत् संवसते बहिः ।
प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥२३॥

व्रतकाल में घर के बाहर ही निवास करे और प्रायश्चित्त पूरा करके ब्राह्मण को भोजन कराना चाहिए ॥२३॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरोऽब्रवीत् ।
चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छ्रं चान्द्रायणं स्मृतम् ॥२४॥

तत्पश्चात् दक्षिणास्वरूप ब्राह्मण को दो गायें प्रदान करनी चाहिए। ऐसा महर्षि पाराशर का मत है। यदि स्वेच्छा से चारों वर्ण की स्त्रियाँ चाण्डाल से सहवास करें तो एक कृच्छ्र और एक चान्द्रायण व्रत करने से उनकी शुद्धि हो जाती है ॥२४॥

---

१. पलमात्र दुग्धभागं गोमूत्र तावदिष्यते ।
घृतं च पलमात्र स्याद् गोमयं तोलकद्वयम् ॥
दधिप्रसृतमात्रं स्यात् पञ्चगव्यमिदं स्मृतम् ।
अथवा पञ्चगव्यानां समानो भाग इष्यते ॥
योशकृद् द्विगुणं मूत्रं पयः स्यात्तच्चतुर्गुणम् ।
घृतं तद् द्विगुणं प्रोक्तं पञ्चगव्ये तथा दधि ॥—गौतमीतन्त्रे

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यथा भूमिस्तथा नारी तस्मात्तां न तु दूषयेत् ।
बन्दिग्राहेण या भुक्ता हत्वा बद्ध्वा बलाद् भयात् ॥२५॥

स्त्रियों को धरती के समान ही कहा गया है, इससे उनके दोषों पर ध्यान नहीं देना चाहिए। जिस स्त्री के साथ बलपूर्वक उसे बाँधकर, दासी बनाकर या उसे भयभीत करके रमण किया गया हो ॥२५॥

कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं शुद्ध्येत् पाराशरोऽब्रवीत् ।
सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः ॥२६॥

तो ऐसी स्त्री सान्तपन कृच्छ्र व्रत के अनुष्ठान से दोषमुक्त हो जाती है। ऐसी बात पाराशर ने कही है। यदि किसी दुरात्मा ने स्त्री की अनिच्छा से केवल एक ही बार सम्भोग किया हो ॥२६॥

प्राजापत्येन शुद्ध्येत ऋतुप्रस्रवणेन च ।
पतत्यर्द्धं शरीरस्य यस्य भार्या सुरां पिबेत् ॥२७॥

तो वह स्त्री प्राजापत्य व्रत और ऋतुकाल में रजोस्राव होने से ही शुद्धता को प्राप्त हो जाती है। जिस मनुष्य की पत्नी मद्यपान कर ले, तो उस पुरुष के शरीर का आधा अंश दूषित और पतित हो जाता है ॥२७॥

पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृतिर्न विधीयते ।
गायत्रीं जपमानस्तु कृच्छ्रं सान्तपनं चरेत् ॥२८॥

इस प्रकार के पतितों की शुद्धि नहीं हो सकती। उसे गायत्री मन्त्र का जप और कृच्छ्र सान्तपन व्रत का अनुष्ठान करना उचित है ॥२८॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
एकरात्रोपवासश्च कृच्छ्रं सान्तपनं स्मृतम् ॥२९॥

एक दिन गोमूत्र, दूसरे दिन गोबर, तीसरे दिन गाय का दूध, चौथे दिन दही, पाँचवें दिन घी, छठे दिन कुशा का जल पीकर और

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सातवें दिन निर्जल उपवास करने का नाम ही कृच्छ्र-सान्तपन व्रत है ॥२९॥

जारेण जनयेद् गर्भं मृते त्यक्ते गते पतौ ।
तां त्यजेदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम् ॥३०॥

जो स्त्री अपने पति के मरने, पति द्वारा त्यागे जाने और पति के विदेश गमन करने पर किसी पर-पुरुष द्वारा गर्भाधान कर ले तो उस पतिता नारी को किसी दूसरे राज्य में ले जाकर निर्वासित कर देना चाहिए ॥३०॥

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा समन्विता ।
सा तु नष्टा विनिर्दिष्टा न तस्याऽऽगमनं पुनः ॥३१॥

यदि ब्राह्मण की पत्नी किसी पर-पुरुष के साथ चली जाय तो वह नष्टा कहलाती है, उसका पुनः आगमन नहीं होता ॥३१॥

कामान्मोहात्तु या गच्छेत् त्यक्त्वा बन्धून् सुतान् पतिम् ।
साऽपि नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः ॥३२॥

जो स्त्री अपने बन्धु, पुत्र और पति को छोड़कर काम या मोह के वशीभूत होकर किसी अन्य पुरुष के साथ चली जाय तो वह इहलोक तथा परलोक दोनों में नष्टा होती है ॥३२॥

मद-मोहगता नारी क्रोधाद् दण्डादिताडिता ।
अद्वितीया गता चैव पुनरागमनं भवेत् ॥३३॥

जो स्त्री मतवाली होकर या किसी प्रकार दण्डित होकर क्रोधवश कहीं अन्यत्र चली जाय तो उसका पुनरागमन हो सकता है ॥३३॥

दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते ।
दशाहं न त्यजेन्नारीं त्यजेन्नष्टश्रुतां तथा ॥३४॥

यदि ऐसी स्त्री को दस दिन तक लगातार बाहर ही रहना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त नहीं होता । इसलिए स्त्री का दस दिनों तक परित्याग

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नहीं करना चाहिए। त्याग कर देने से वह स्त्री स्वयं तो भ्रष्ट हो ही जाती है, साथ-ही-साथ ।३४।।

भर्ता चैव चरेत् कृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धं चैव बान्धवाः ।
तेषां भुक्त्वा च पित्वा च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ।।३५।।

उसके पति को भी एक कृच्छ्र और सम्बन्धी को आधा कृच्छ्र व्रत करना पड़ता है। यदि ऐसे व्यक्ति के घर भोजन ग्रहण किया जाय तो रात-दिन उपवास करने से शुद्धि प्राप्त होती है ।।३५।।

ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत् परपुंसा विवर्जिता ।
गत्वा पुंसां शतं याति त्यजेयुस्तां तु गोत्रिणः ।।३६।।

यदि ब्राह्मण की पत्नी घर छोड़कर कहीं अकेली गमन करे और सौ पुरुषों के पास जाकर भी लौट आये तो सगोत्रियों-द्वारा ऐसी स्त्री का बहिष्कार किया जाना चाहिए ।।३६।।

पुंसो यदि गृहे गच्छेत्तदशुद्धं गृहं भवेत् ।
पति-मातृगृहं यच्च जारस्यैव तु तद्गृहम् ।।३७।।

यदि ऐसी स्त्री अपने पति के घर वापस आ जाय तो उसके पति का घर अशुद्ध हो जाता है। पतिगृह या पितृगृह में जाने पर भी वह घर उसके प्रेमी का ही माना जाता है ।।३७।।

उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात् पञ्चगव्येन [1]शोधयेत् ।
त्यजेच्च मृण्मयं पात्रं वस्त्रं काष्ठं च शोधयेत् ।।३८।।

ऐसे घर की शुद्धि के लिए उसकी भूमि की मिट्टी को कुछ खुरच-कर पञ्चगव्य द्वारा लेपन करे। घर में व्यवहृत होनेवाले मिट्टी के पात्रों को हटा दे, वस्त्र तथा काष्ठ को जल से धोकर शुद्ध कर ले ।।३८।।

सम्भारांश्छोधयेत् सर्वान् गोबालैश्च फलोद्भवान् ।
ताम्राणि पञ्चगव्येन कांस्यानि दश भस्मभिः ।।३९।।

---

१. 'सिचयेत्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

घर में काम आनेवाली और सभी चीजों को शुद्ध कर ले अर्थात् फल से निर्मित वस्तुओं को गोबालों से, ताँबे के पात्र को पंचगव्य से और काँसे आदि के बरतनों को दस बार भस्म लगाकर मलना चाहिए।।३९।।

प्रायश्चित्तं चरेद् विप्रो ब्राह्मणैरुपादितम्[1] ।
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात् प्राजापत्यद्वयं चरेत् ।।४०।।

ब्राह्मण जाति के लोगों को अन्य ब्राह्मणों के कथनानुसार प्रायश्चित्त करना उचित है । दो प्राजापत्य व्रत करने के पश्चात् दक्षिणा में ब्राह्मण को दो गायों का दान करना चाहिए ।। ४०।।

इतरेषामहोरात्रं पञ्चगव्येन शोधनम् ।
उपवासैर्व्रतैः पुण्यैः स्नान-सन्ध्या-ऽर्चनादिभिः ।।४१।।

ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य वर्ण के लोग तो एक दिन-रात उपवास करके पंचगव्य द्वारा शुद्धि पा लेते हैं। उपवास, व्रत, पुण्य, स्नान, सन्ध्योपासन और देवपूजन आदि ।। ४१ ।।

जप-होम-दया-दानैः शुद्ध्यन्ते ब्राह्मणादयः ।
आकाशं वायुरग्निश्च मेध्यं भूमिगतं जलम् ।।४२।।

जप, हवन, दया और दान द्वारा ब्राह्मण वर्ण के व्यक्ति शुद्ध हो जाते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, पृथ्वी पर गिरा हुआ शुद्ध और स्वच्छ जल ।। ४२ ।।

न प्रदुष्यन्ति[2] दर्भाश्च यज्ञेषु चमसा यथा ।।४३।।

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

और कुशा कभी दूषित नहीं होता। जिस प्रकार यज्ञ का चमस पात्र (हव्य पात्र) कभी अशुद्ध नहीं होता उसी प्रकार ये भी सर्वदा शुद्ध माने गये हैं ।। ४३ ।।

इस प्रकार पण्डित शिवदत्तमिश्रशास्त्रिकृत 'शिवदत्ती' हिन्दीटीका में पाराशरप्रोक्त धर्मशास्त्र में दसवाँ अध्याय समाप्त ।। १० ।।

---

१. 'रुपपादयेत्' इति । २. 'दुष्यन्ति च' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

११. एकादशोऽध्यायः

अमेध्य-रेतो गोमांसं चाण्डालान्नमथापि वा ।
यदि भुक्तं तु विप्रेण कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत् ॥ १ ॥

जो ब्राह्मण अपनी इच्छा से किसी प्रकार का अग्राह्य पदार्थ, जैसे—मानव-अस्थि, विष्ठा, मूत्र, वीर्य, रज, शव आदि का भक्षण कर ले अथवा गोमांस या चाण्डाल का अन्न ग्रहण करे, तो उसे शुद्धि के निमित्त चान्द्रायण व्रत करना उचित है। और यदि उपर्युक्त वस्तुएँ किसी के द्वारा बलात् या अनिच्छापूर्वक ग्रहण की गयी हों तो ऐसी अवस्था में कृच्छ्रव्रत करना चाहिए ॥ १ ॥

तथैव क्षत्रियो वैश्योऽप्यर्द्धं चान्द्रायणं चरेत् ।
शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्ते प्राजापत्यं समाचरेत् ॥ २ ॥

यदि क्षत्रिय या वैश्य कथित वस्तुओं का भक्षण कर ले तो उसे अर्ध-चान्द्रायण व्रत करना पड़ता है। शूद्र के द्वारा ग्रहण किये जाने पर प्राजापत्य नामक व्रत करना उचित है ॥ २ ॥

पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो ब्रह्मकूर्चं पिबेद् द्विजः ।
एक-द्वि-त्रि-चतुर्गा वा दद्याद् विप्राद्यनुक्रमात् ॥ ३ ॥

व्रतकाल में शूद्र को पञ्चगव्य और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य—इन तीनों वर्णों को ब्रह्मकूर्च का पान करके क्रमशः एक, दो, तीन और चार गायों का दान करने का विधान कहा गया है ॥ ३ ॥

शूद्रान्नं सूतकान्नं च अभोज्यस्याऽन्नमेव च ।
शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वोच्छिष्टं तथैव च ॥ ४ ॥

शूद्र का अन्न, सूतक का अन्न, ग्रहण के समय का अन्न, भक्षण के अयोग्य मनुष्य का अन्न, सन्दिग्ध अन्न अर्थात् जिसके ग्राह्य-अग्राह्य का निर्णय न हो सके, निषिद्ध अन्न और किसी के भक्षण के पश्चात् बचा हुआ जूठा अन्न, ॥ ४ ॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि भुक्तं तु विप्रेण अज्ञानादापदाऽपि वा ।
ज्ञात्वा समाचरेत् कृच्छ्रं ब्रह्मकूर्चं तु पावनम् ॥ ५ ॥

जो ब्राह्मण संकट काल में या अनजान में भक्षण कर ले और बाद में उसकी यथार्थता का बोध होने पर उस ब्राह्मण के लिए कृच्छ्र व्रत और ब्रह्मकूर्च का पान शुद्धि के साधन माने गये हैं ॥५॥

बालैर्नकुल-मार्जारैरन्नमुच्छिष्टितं[1] यदा ।
तिल-दर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्धयते नाऽत्र संशयः ॥ ६ ॥

जिस परिपक्व अन्न को किसी बालक, नेवले या बिलाव ने जूठा कर दिया हो तो ऐसे अन्न पर तिल और कुशा का जल छिड़कने मात्र से ही वह अन्न पवित्र हो जाता है ॥६॥

शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्त्वाऽन्नं पञ्चगव्येन शुद्धयति ।
क्षत्रियो वाऽपि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्धयति ॥ ७ ॥

यदि किसी शूद्र ने अभोज्य पदार्थ का भक्षण किया हो तो उसके लिए पंचगव्य का पान और ऐसी ही अवस्था के क्षत्रिय या वैश्य के लिए प्राजापत्य व्रत करने का विधान है ॥७॥

एकपङ्क्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने ।
यद्येकोऽपि त्यजेत् पात्रं शेषमन्नं न भोजयेत् ॥ ८ ॥

ब्राह्मणों की मण्डली की कतार में बैठकर भोजन करनेवाला कोई व्यक्ति यदि भोजन छोड़कर उठ जाय तो उस कतार के सभी ब्राह्मणों को भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। क्योंकि इसके बाद किया जानेवाला भोजन जूठा माना जाता है ॥८॥

मोहाद् भुञ्जीत यस्तत्र पङ्क्तावुच्छिष्टभोजने ।
प्रायश्चित्तं चरेद् विप्रः कृच्छ्रं[2] सान्तपनं तथा ॥ ९ ॥

---

१. '-मुच्छेषितं' इति । २. 'तदा' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि मोहवश कोई ब्राह्मण उस जूठी पंक्ति में भोजन कर ही ले तो कृच्छ्र-सान्तपन व्रत करने से उसका प्रायश्चित्त दूर हो जाता है ॥९॥

पीयूषं श्वेत - लशुनं वृन्ताकफल - गृञ्जने ।
पलाण्डुं [1]वृक्षनिर्यासं देवस्वं कवकानि च ॥१०॥

यदि कोई ब्राह्मण अपनी अज्ञानता के कारण तुरन्त की ब्यायी हुई गौ का दूध, सफेद लहसुन, सफेद रंग का बैगन, गाजर, प्याज, गोंद, देवसमर्पित वस्तु, कुकुरमुत्ता, ॥१०॥

उष्ट्रीक्षीरमविक्षीरमज्ञानाद् भुञ्जते[2] द्विजः[3] ।
त्रिरात्रमुपवासेन पञ्चगव्येन शुद्धयति ॥११॥

ऊँटनी का दूध या भेड़ी का दूध पान कर ले तो उसे तीन दिन उपवास करके पंचगव्य पान करना आवश्यक है ॥११॥

मण्डूकं भक्षयित्वा तु मूषिकामांसमेव च ।
ज्ञात्वा विप्रस्त्वहोरात्रं यवकान्नेन शुद्धयति ॥१२॥

यदि कोई जान-बूझकर मेढक या चूहे का मांस भक्षण करे तो उसे शुद्धि के निमित्त एक दिन जव का बनाया हुआ भात खाना चाहिए ॥१२॥

क्षत्रियश्चाऽपि वैश्यश्च क्रियावन्तौ शुचिव्रतौ ।
तद्गृ[4]हे तु द्विजैर्भोज्यं हव्य-कव्येषु नित्यशः ॥१३॥

अपने धर्म में तत्पर सदाचारी क्षत्रिय या वैश्य के घर देवता या पितृ कार्य में आमन्त्रित ब्राह्मण को निःसंकोच भोजन करना चाहिए ॥१३॥

[5]घृतं तैलं तथा क्षीरं गुडं स्नेहेन पाचितम् ।

---

१. 'वृक्षनिर्यासान्' 'पलाण्डुवृक्षनिर्यासान् देवस्वकवनानि च' इति च ।
२. 'पिबते' इति । ३. 'द्विजाः' इति । ४. 'तद्गृहेषु' इति । ५. 'घृतं क्षीरं तथा तैलं गूढं तैलेन पाचितम्' इत्यपि पाठः क्वचित्पुस्तके दृश्यते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गत्वा नदीतटे विप्रो भुञ्जीयाच्छूद्रभोजनम्[1] ॥१४॥

ब्राह्मण को शूद्र के घर का दूध, गुड़, तेल तथा घृतनिर्मित पदार्थ किसी जलाशय या नदी के तट पर ले जाकर भक्षण करना चाहिए, परन्तु उसके घर में बैठकर भोजन नहीं करना चाहिए ॥१४॥

मद्य-मांसरतं नित्यं नीचकर्म-प्रवर्तकम् ।
तं शूद्रं वर्जयेद् विप्रःश्वपाकमिव दूरतः ॥१५॥

मद्य-मांस का क्रय-विक्रय या चर्मच्छेदन आदि निषिद्ध कर्म करनेवाले शूद्र का ब्राह्मण द्वारा परित्याग किया जाना चाहिए ॥१५॥

द्विज-शुश्रूषणरतान् मद्य-मांस-विवर्जितान् ।
स्वकर्मणि[2] रतान्नित्यं न तांश्छूद्रान्[3] त्यजेद् द्विजः ॥१६॥

विप्रसेवी, मद्य-मांस से रहित और अपने कर्म में निरत रहनेवाले शूद्र का ब्राह्मण को परित्याग नहीं करना चाहिए ॥१६॥

अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः सूतके मृतकेऽपि वा ।
प्रायश्चित्तं कथं[4] तेषां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत् ॥१७॥

सूतक या मृतक के घर में अनजाने ही यदि कोई ब्राह्मण भोजन कर ले तो उस ब्राह्मण को विभिन्न वर्णों के घर में भोजन करने का अलग-अलग ढंग से प्रायश्चित्त करना पड़ता है ॥१७॥

गायत्र्यष्टसहस्रेण शुद्धिः स्याच्छूद्रसूतके ।
वैश्ये पञ्चसहस्रेण त्रिसहस्रेण क्षत्रिये ॥१८॥

सूतक में शूद्र के घर भोजन करने से आठ हजार, वैश्य के घर भोजन करने से पाँच हजार और क्षत्रिय के घर भोजन करने पर तीन हजार गायत्री मन्त्र जप करने से उस ब्राह्मण का दोष दूर हो जाता है ॥१८॥

---

१. 'च्छूद्रभाजने' इति । 'स्वकर्मनिरतान्नित्यं' इति । ३. 'तान् शूद्रान्' इति ।
४. 'तत्र' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते [1]द्वे सहस्रे तु दापयेत् ।
अथवा वामदेव्येन [2]साम्नैवैकेन शुद्धयति ॥१९॥

किसी ब्राह्मण के घर सूतक में भोजन करने से दो हजार गायत्री का जाप अथवा 'वामदेव्य' साम अर्थात् 'कया नश्चित्र०' से लेकर तीन मन्त्र का एक पाठ कर लेने से ही शुद्धि हो जाती हैं ॥१९॥

शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं शू[3]द्रवेश्मन आहृतम् ।
पक्वं विप्रगृहे [4]भुक्तं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥२०॥

शूद्र के घर का सूखा अन्न, गाय का दूध और घी, तेल आदि ब्राह्मण के घर में पकाकर भक्षण के योग्य होता है। ऐसा मनुजी ने आदेश दिया है ॥२०॥

[5]आपत्कालेषु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि ।
मनस्तापेन शुद्ध्येत [6]द्रुपदां वा [7]जपेच्छतम् ॥२१॥

यदि कोई ब्राह्मण विपत्तिकाल में शूद्र के घर का बना हुआ भोजन कर ले तो मन में पश्चात्ताप कर लेने मात्र से ही उसकी शुद्धि हो जाती है अथवा सौ बार 'द्रुपदादिव०' मन्त्र का पाठ करने से दोष नष्ट हो जाता है ॥२१॥

दास - नापित-गोपाल - कुलमित्रार्द्धसीरिणः ।
एते शूद्रेषु भोज्यान्ना यश्चाऽऽत्मानं निवेदयेत्[8] ॥२२॥

दास, नापित, गोपाल, अपने वंश का मित्र, अर्धसीरी तथा आत्मसमर्पणकारी शूद्र का अन्न भक्षणीय कहा जाता है ॥२२॥

---

१. 'द्विसहस्रं तु' इति। २. 'साम्ना चैकेन' इति। ३. 'शूद्रवेषेण' इति। ४. 'भुंक्ते' इति। ५. 'आपत्काले तु' इति। ६. 'ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः।' ७. 'शतं जपेत्' इति। ८. 'विधीयते' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।
असंस्काराद् भवेद्दासः संस्कारादेव नापितः ॥२३॥

ब्राह्मण द्वारा शूद्र कन्या से उत्पन्न सन्तान का संस्कार कर देने से वह 'नापित' हो जाता है, और संस्कार-विहीन सन्तान 'दास' कहलाती है ॥२३॥

क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां समुत्पन्नस्तु यः सुतः ।
स गोपाल इति ख्यातो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२४॥

क्षत्रिय द्वारा शूद्र कन्या से उत्पन्न सन्तान को 'गोपाल' कहते हैं। ऐसे व्यक्ति का अन्न ब्राह्मण को भक्षण करना उचित है ॥२४॥

वैश्यकन्यासमुद्भूतो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः ।
[2]सो ह्यार्द्धिक इति ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२५॥

ब्राह्मण द्वारा वैश्य कन्या में उत्पन्न सन्तान का संस्कार कर देने से वह सन्तान 'अर्धसोरी' कहलाती है। ऐसे मनुष्य का अन्न ब्राह्मणों के लिए ग्राह्य है ॥२५॥

भाण्डस्थितमभोज्येषु जलं दधि घृतं पयः ।
अकामतस्तु यो भुङ्क्ते प्रायश्चित्तं कथं भवेत् ? ॥२६॥

अग्राह्यों के पात्र में रखे हुए जल, दही, घी या दूध को जो अनजाने में ही ग्रहण कर ले, तो उसका प्रायश्चित्त किस प्रकार से हो सकता है ? ॥२६॥

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वा उपसर्पति ।
ब्रह्मकूर्चोपवासेन [3]योज्या वर्णस्य निष्कृतिः ॥२७॥

---

१. 'संस्कृतस्तु भवेद्दासो ह्यसंस्कारैस्तु नापितः' इति । 'संस्कारात्तु भवेद्दासः असंस्काराच्च नापितः' इति च पाठ० । २. 'सोत्यर्द्धिक' इति ।

३. 'याज्यवर्णस्य' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चारों वर्णों में से सभी लोगों की शुद्धि ब्रह्मकूर्च के पान और उपवास करने से हो जाती है ॥२७॥

शूद्राणां नोपवासः स्याच्छूद्रो दानेन शुद्ध्यति ।
ब्रह्मकूर्चमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥२८॥

शूद्रों को उपवास करने का आदेश नहीं दिया गया है। शूद्र केवल दान करने से ही शुद्ध हो जाता है। ब्रह्मकूर्च पान करके रात-दिन रह जाने से चाण्डाल भी शुद्ध हो जाता है ॥२८॥

गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधि सर्पिः कुशोदकम् ।
निर्दिष्टं पञ्चगव्यं तु[1] पवित्रं पापशोधनम् ॥२९॥

पंचगव्य बनाने के लिए गाय का गोबर, गोमूत्र, दूध, दही, घी और कुश के जल का मिश्रण किया जाता है। इसका मिश्रण समस्त पापों का नाशक और अत्यन्त पवित्र कहा गया है ॥२९॥

गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेतायाश्चैव गोमयम् ।
पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया गृह्यते दधि ॥३०॥

काली गाय का मूत्र, सफेद गाय का गोबर, ताम्रवर्णी गौ का दूध और लाल रंग की गाय का दही, ॥३०॥

कपिलायाः घृतं ग्राह्य सर्वं[2] कापिलमेव वा ।
मूत्रमेकपलं दद्यादङ्गुष्ठार्द्धं तु गोमयम् ॥३१॥

कपिला गाय का घृत अथवा उपर्युक्त वर्णित सभी वस्तुएँ कपिला गाय का ही हो। गोमूत्र ४ तोला, आधे अँगूठे के बराबर गोबर, ॥३१॥

क्षीरं सप्तपलं दद्याद् दधि त्रिपलमुच्यते ।
घृतमेकपलं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम् ॥३२॥

दूध २८ तोले, दही १२ तोले, घी ४ तोले और कुशा का जल ४ तोले लेना चाहिए। ३२॥

१. 'च' इति। २. 'कपिल' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

[1]गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं [2]गन्धद्वारेति गोमयम् ।
[3]आप्यायस्वेति च क्षीरं [4]दधिक्राव्णस्तथा दधि ॥३३॥

गोमूत्र ग्रहण के समय 'ॐ भूर्भुवः स्वः०' गायत्रीमंत्र का पाठ, 'गन्धद्वारां०' मन्त्र से गोबर, 'आप्यायस्व०' मन्त्र से दूध और 'दधिक्रा०णो०' मन्त्र से दही ग्रहण करना चाहिए ॥३३॥

[5]तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं [6]देवस्य त्वा कुशोदकम् ।
पञ्चगव्यमृचा पूतं स्थापयेदग्निसन्निधौ ॥ ३४॥

'तेजोऽसि शुक्रम्०' मन्त्र से घृत और 'देवस्य त्वा०' मन्त्र से कुशोदक ग्रहण करे। उक्त ऋचाओं से शुद्ध किया हुआ पंचगव्य अग्नि के समक्ष स्थापित करना चाहिए ॥३४॥

[7]आपो हिष्ठेति चाऽऽलोड्य [8]मा नस्तोकेति मन्थयेत् ।
सप्त वारास्तु ये दर्भा अच्छिन्नाग्राः शुकत्विषः ॥३५॥

'आपो हिष्ठा०' मन्त्र द्वारा उसे हिलोरना और 'मा नस्तोके०' मन्त्र से मंथन किया जाना चाहिए। इसके पश्चात् सात बार अर्थात्

---

१. ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ।

२. गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् ।
ईश्वरीं सर्वभूतानां तामिहोपह्वये श्रियम् ॥

३. आप्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् । भवा वाजस्य सङ्गथे ॥
—ऋ० मं० ९, सूक्त ३१, मन्त्र० ४

४. दधिक्राव्णो अकारिषं जिष्णोरश्वस्य वाजिनः । सुरभि नो मुखा करत्प्राण आयूंषि तारिषत् ॥
—ऋ० ४,३९,६

५. तेजोऽसि शुक्रममृतमायुष्या आयुर्मे पाहि ।

६. देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामाददे ॥
—शु० य० सं०, अ० २२, म० १

७. आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन । महे रणाय चक्षसे ॥ ऋ. १०,९,१

८. मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्रभामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥—ऋ. १,११४,८

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सात अपराधों के निवारक ऐसे कुशों को ग्रहण करें जिनके आगे का भाग कटा-फटा न हो और उनका रंग बिलकुल हरा हो ।३५।।

एतैरुद्धृत्य होतव्यं पञ्चगव्यं यथाविधि ।
[1]'इरावती' [2]'इदं विष्णुर्[3]मानस्तोके'[4]ति [5]शंवती ।।३६।।

उपर्युक्त प्रकार की कुशाओं द्वारा पंचगव्य उठाकर विधिपूर्वक हवन करना चाहिए। हवन की ऋचाएँ 'इरावती०', 'इदं विष्णु०', 'मानस्तोके०' और 'शंवतीः०' हैं ।।३६।

एताभिश्चैव होतव्यं हुतशेषं पिबेद् द्विजः ।
आलोड्य प्रणवेनैव निर्मन्थ्य प्रणवेन तु ।।३७।।

इन्हीं से हवन करना चाहिए। हवन करने के बाद जो कुछ शेष रह जाय उसे पान करना चाहिए। ब्राह्मण को पान के पूर्व प्रणव पाठ द्वारा उसका आलोड़न और मंथन करना उचित है ।।३७।।

उद्धृत्य प्रणवेनैव पिबेच्च प्रणवेन तु ।
यत्त्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम् ।।३८।।

प्रणव से निकालकर प्रणव द्वारा ही पान करे। मनुष्य की हड्डी और चमड़े में जो कुछ भी पाप समाविष्ट रहता है। ३८।।

[6]ब्रह्मकूर्चो दहेत् सर्वं [7]प्रदीप्ताग्निरिवेन्धनम् ।
पवित्रं त्रिषु लोकेषु देवताभिरधिष्ठितम् ।।३९।।

---

१. इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तम्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ।। - ऋ० ७,९९,३

२. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् । समूलहमस्य पांसुरे ।-ऋ० १,२२,१७

३. 'मानस्तोकं'—ऋ० १,११४,८। ४. 'च' इति ।

५. शंवतीः पारयन्त्येते तं मृच्छन्ति वचो यथा ।
अस्यारन्तं यम केतुं य एवेदमिति ब्रवत् ।
—ऋ० परिशिष्टम्

६. 'ब्रह्मकूर्चं' इति । ७. 'यथैवाऽग्निरिवेन्धनम्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उसे यह ब्रह्मकूर्च सम्पूर्ण रूप से भस्मसात् कर देता है जिस प्रकार धधकती हुई अग्नि इंधन को जला डालती है। यह त्रैलोक्य में अत्यन्त पुनीत होने के साथ ही साथ देवताओं का निवासस्थल भी है ॥३९॥

वरुणश्च व गोमूत्रे गोमये हव्यवाहनः।
दध्नि वायुः समुद्दिष्टः सोमः क्षीरे घृते रविः ॥४०॥

गोमूत्र में वरुण, गोबर में अग्नि, दही में वायु, दूध में चन्द्रमा और घी में सूर्य का निवास माना गया है ॥४०॥

पिबतः पतितं तोयं भोजने मुखनिःसृतम्।
अपेयं तद् विजानीयात् पीत्वा[1] चान्द्रायणं चरेत् ॥४१॥

पानी पीने के समय गिरा हुआ पानी या भोजन के समय मुंह से गिरा हुआ अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए। यदि ग्रहण ही कर ले तो उसकी शुद्धि के लिए चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥४१॥

कूपे च पतितं दृष्ट्वा श्व-शृगालौ च मर्कटम्।
अस्थि-चर्मादि पतितं पीत्वाऽमेध्या अपो द्विजः ॥४२॥

किसी कूप में यदि कुत्ते, गीदड़, बन्दर की हड्डी या चमड़ा गिरा हुआ दिखाई दे और उस जल को ब्राह्मण पी जाय तो उसे वर्णित प्रकार का प्रायश्चित्त करना उचित है ॥४२॥

नारं तु कुणपं काकं [2]विड्वराह-खरोष्ट्रकम्।
गावयं सौप्रतीकं च मायूरं खड्गकं तथा ॥४३॥

मनुष्य, कौवे, ग्राम-शूकर, गधे, ऊँट, गवय (नील गाय), सुप्रतीक (हाथी), मोर, गैंडा, ॥४३॥

वैयाघ्रमार्क्षं सहं वा कूपे यदि निमज्जति।
तडागस्याऽथ दुष्टस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥४४॥

---

१. 'भुक्त्वा' इति। २. 'विड्वराहं' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

व्याघ्र, भालू, सिंह आदि किसी कुएँ या तालाब में गिरकर मर गये हों तो उस दूषित जल को पीने से, ॥४४॥

प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणैतेन सर्वशः ।
विप्रः शुद्धयेत् त्रिरात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥४५॥

ब्राह्मण को तीन दिन और क्षत्रिय को दो दिन तक उपवास करना चाहिए ॥४५॥

एकाहेन तु वैश्यस्तु शूद्रो नक्तेन शुद्धयति ।
परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च ॥४६॥

वैश्य एक दिनके उपवास तथा शूद्र रात्रिमें भोजन करने से ही शुद्धता को प्राप्त हो जाता है। परपाकनिवृत्त और परपाकरत, ॥४६॥

अपचस्य च भुक्त्वाऽन्नं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ।
अपचस्य च यद्दानं दातुश्चाऽस्य कुतः फलम् ? ॥४७॥

तथा अपच का अन्न यदि कोई ब्राह्मण ग्रहण करे तो उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए। अपच को दान करने का कुछ भी फल नहीं होता ॥४७॥

दाता प्रतिग्रहीता च तौ द्वौ निरयगामिनौ ।
गृहीत्वाऽग्निं समारोप्य पञ्चयज्ञान्न निर्वपेत् ॥४८॥

दान देने और ग्रहण करनेवाले दोनों ही नरकगामी होते हैं। जो कोई अग्नि का समारोपण करके भी पंचयज्ञों को नहीं करता ॥४८॥

परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीर्तितः ।
पञ्चयज्ञान् स्वयं कृत्वा परान्नेनोपजीवति ॥४९॥

उसे मुनियों ने 'परपाकनिवृत्त' की संज्ञा दी है। जो स्वयं पंचयज्ञों को करके भी किसी दूसरे के अन्न पर निर्भर रहता है ॥४९॥

सततं प्रातरुत्थाय परपाकतस्तु सः ।

१. 'तु' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्जितः ॥५०॥

वह प्रातः उठने के बाद सदैव 'परपाक-रत' कहा जाता है। गृहस्थाश्रम में रहनेवाला जो ब्राह्मण दान नहीं करता ॥५०॥

ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञैश्वपच: परिकीर्तितः।

युगे युगे तु ये धर्मास्तेषु तेषु च ये द्विजाः ॥५१॥

उस ब्राह्मण को धर्मवेत्ता ऋषियों ने 'श्वपच' के नाम से घोषित किया है। अन्य युग के जो धर्म हैं और उन युगों के जो ब्राह्मण हैं ॥५१॥

तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ते द्विजाः।

हुङ्कारं ब्राह्मणस्योक्त्वा त्वङ्कारं च गरीयसः ॥५२॥

उनकी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि वे विप्र युग के प्रतीक हैं। यदि किसी ब्राह्मण को 'हुंकार' और अपने से बड़े लोगों को 'तुकार' शब्द से सम्बोधित करे तो वह ॥५२॥

स्नात्वा तिष्ठन्नहःशेषमभिवाद्य प्रसादयेत्।

ताडयित्वा तृणेनापि कण्ठे बध्वाऽपि वाससा ॥५३॥

दिन के शेष होने तक स्नान करके बैठा रहे और रुष्ट हुए को नमस्कार के द्वारा प्रसन्न करने की चेष्टा करे। तिनके से आघात करने, गले में वस्त्र द्वारा बाँधने ॥५३॥

विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रसादयेत्।

अवगूर्य[1] त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने ॥५४॥

या वाद-विवाद में परास्त कर ले तो उन्हें प्रणाम करके प्रसन्न करे। यदि ब्राह्मण को मारने के उद्देश्य से दण्ड उठाये तो एक दिन, भूमि पर धराशायी कर देने पर तीन दिन, ॥५४॥

अतिकृच्छ्रं च रुधिरे कृच्छ्रोऽभ्यन्तरशोणिते।

---

१. 'अवगूह्य' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

नवाहमतिकृच्छ्री स्यात् पाणिपूरान्नभोजनः ॥५५॥

प्रहार के द्वारा रक्तपात होने पर अतिकृच्छ्र और चमड़े के अन्दर रक्त जम जाने पर कृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान करना चाहिए। एक मुट्ठी अन्न के द्वारा नव दिन तक व्यतीत करना चाहिए ॥ ५५ ॥

त्रिरात्रमुपवासी[1] स्यादतिकृच्छ्रः स उच्यते ।
सर्वेषामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते ॥५६॥

इसके पश्चात् तीन दिन तक उपवास करने से कृच्छ्र नामक व्रत पूरा होता है। जब समस्त प्रकार के पापों का एक साथ समन्वय हो जाय तब ॥ ५६ ॥

दशसाहस्रमभ्यस्ता गायत्रीशोधनं परम् ॥५७॥

इति पाराशरीये धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

दस हजार गायत्री मन्त्र का पाठ करने से समस्त पापों का नाश हो जाता है ॥ ५७ ॥

इस प्रकार 'शिवदत्ती' भाषा टीका में पाराशरीय धर्मशास्त्र में

ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त ॥ ११ ॥

१२. द्वादशोऽध्यायः

दुःस्वप्नं यदि पश्येद्[2] वा वान्ते वा क्षुरकर्मणि ।
मैथुने प्रेतधूमे[3] च स्नानमेव विधीयते ॥ १ ॥

किसी प्रकार का खराब स्वप्न देखने, वमन करने, क्षौर-कर्म कराने, मैथुन करने या प्रेतधूम (श्मशान आदि स्थानों का धुआँ) लगने पर स्नान मात्र से ही शुद्धि हो जाती है ॥ १ ॥

१. 'त्रिरात्रमुपवासः' इति । २. 'पश्येत्तु' इति । ३. 'धूम्रे' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं [1]सुरासंस्पृष्टमेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥ २ ॥

अज्ञान के कारण मल-मूत्र या मद्य-मिश्रित पदार्थ आदि खा-पी लेने पर, तीनों वर्णों को पुनः अपना संस्कार करना चाहिए ॥ २ ॥

अजिनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्या व्रतानि च ।
निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारकर्मणि ॥ ३ ॥

जब विप्रों का पुनः संस्कार किया जाता है तब मृगचर्म, मेखला, दण्ड आदि धारण नहीं करना पड़ता। इसके अतिरिक्त भैक्ष्यचर्या (भिक्षाचरण) और व्रतादि कर्म भी नहीं करने पड़ते ॥ ३ ॥

विण्मूत्रभोजो शुद्ध्यर्थं प्राजापत्यं समाचरेत् ।
पञ्चगव्यं च कुर्वीत स्नात्वा पीत्वा शुचिर्भवेत् ॥ ४ ॥

मल-मूत्रभक्षी के लिए प्राजापत्य व्रत का विधान है। स्नान के पश्चात् पंचगव्य का पान करने से शुद्धि मिलती है ॥ ४ ॥

जलाऽग्निपतने चैव प्रव्रज्याऽनाशकेषु च ।
वृत्यावसितवर्णानां कथं शुद्धिर्विधीयते ? ॥ ५ ॥

मनुष्य के जल में डूबने, आग में जलने, संन्यास ग्रहण करने, पहाड़ से गिरने, अनशन व्रत करने या आत्महत्या का प्रयास करके बचे रहने पर चारों वर्णों के लोगों की शुद्धि किस प्रकार हो सकती है ? ॥ ५ ॥

प्राजापत्यद्वयेनैव तीर्थाभिगमनेन च ।
वृषैकादशदानेन वर्णाः शुद्ध्यन्ति ते त्रयः ॥ ६ ॥

दो प्राजापत्य व्रत करके किसी तीर्थस्थान में स्नान करके दस गौ और एक बैल का दान करने से तीनों वर्णों की शुद्धि हो जाती है ॥६॥

ब्राह्मणस्य [2]प्रवक्ष्यामि वनं गत्वा चतुष्पथे ।

---

१. 'सुरां वा पिबते यदि' इति । २. 'विण्मूत्रस्य च' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

स-शिखं वपनं कृत्वा प्राजापत्यद्वयं चरेत् ॥ ७ ॥

वन में स्थित चौराहे के बीच बैठकर शिखा सहित मुण्डन और दो प्राजापत्य करने से ब्राह्मण की शुद्धि होती है ॥ ७ ॥

गोद्वयं दक्षिणां दद्याच्छुद्धिं पाराशरो[1]ऽब्रवीत् ।
मुच्यते तेन पापेन ब्राह्मणत्वं च गच्छति ॥ ८ ॥

इसके अतिरिक्त दक्षिणा में दो गायों का दान करना चाहिए। ऐसा महर्षि पाराशर का आदेश है। फिर उक्त पाप से रहित होकर ब्राह्मण अपने ब्राह्मणत्व को पा लेता है ॥ ८ ॥

स्नानादि पञ्च पुण्यानि कीर्तितानि मनीषिभिः ।
आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥ ९ ॥

आग्नेय, वारुण, ब्राह्म, वायव्य और दिव्य—इन पाँच प्रकार के स्नानों को पण्डितों ने पुनीत (पवित्र) कहा है ॥ ९ ॥

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम् ।
'[2]आपो हिष्ठे'ति च ब्राह्मं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥१०॥

सम्पूर्ण शरीर में भस्म लेपन 'आग्नेय' स्नान, जल में नहाना 'वारुण' स्नान, 'आपो हिष्ठा–' मन्त्र द्वारा मार्जन करने से 'ब्राह्म' स्नान, गाय के रज से 'वायव्य' स्नान होता है ॥ १० ॥

यत्तु सातपवर्षेण [3]तत्स्नानं दिव्यमुच्यते ।
तत्र स्नात्वा तु गङ्गायां स्नातो भवति मानवः ॥११॥

जब धूप निकलने के साथ ही साथ कुछ बारिश भी हो रही हो तो उसमें नहाने से 'दिव्य' स्नान होता है। उसमें नहाने से मनुष्य को गंगा-स्नान करने का फल मिलता है ॥ ११ ॥

स्नातुं यान्तं द्विजं सर्वे देवाः पितृगणैः सह ।

१. 'स्वायम्भुवोऽब्रवीत्' इति । २. 'आपो हिष्ठा०'–ऋ० १०,९,१ । ३. 'स्नानं तद्दिव्यमुच्यते' इत्यपि पाठः ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

वायुभूतास्तु गच्छन्ति तृषार्त्ताः सलिलार्थिनः ॥१२॥

जब ब्राह्मण लोग स्नान के लिए जाते हैं तो उनके पीछे-पीछे सभी देवता, पितर आदि वायु के रूप में अपनी तृषा-शान्ति के लिए चलते हैं ॥ १२ ॥

निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्त्रनिष्पीडने कृते ।
तस्मान्न पीडयेद् वस्त्रमकृत्वा पितृतर्पणम् ॥१३॥

स्नान के बाद वस्त्र निचोड़ने पर देव-पितृगणों की आशा निराशा में परिणत हो जाती है । इसलिए जब तक पितृतर्पण न कर ले तब तक गीले वस्त्र को निचोड़ना नहीं चाहिए ॥ १३ ॥

रोमकूपेष्ववस्थाप्य यस्तिलैस्तर्पयेत् पितॄन्[1] ।
तर्पितास्तेन ते सर्वे रुधिरेण मलेन च ॥१४॥

जो मनुष्य अपने रोमकूपों पर तिल रखकर पितरों का तर्पण करता है तो ऐसा तर्पण रक्त और मल द्वारा किया जानेवाला तर्पण समझा जाता है ॥ १४ ॥

अवधूनोति च यः केशान् स्नात्वा प्रस्रवते द्विजः ।
आचामेद् वा जलस्थोऽपि स बाह्यः पितृ-दैवतैः ॥१५॥

स्नान के बाद अपने केशों को झटकारने, गीले कपड़े पहनकर लघुशंका करने और सूखे कपड़े से जल में खड़ा होकर आचमन करनेवाला ब्राह्मण देव-पितृ के कार्य के लिए अयोग्य होता है ॥ १५ ॥

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छ-शिखोऽपि वा ।
विना यज्ञोपवीतेन आचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत् ॥१६॥

शिर या गले में कपड़ा लपेट, धोती, लाँग या शिखा को खोल या यज्ञोपवीत से रहित होकर आचमन करने पर भी उस ब्राह्मण को शुद्धि नहीं मिलती ॥ १६ ॥

१. 'यस्तूत्सृजेन्मलम्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

जले स्थलस्थो नाऽऽचामेज्जलस्थश्च[1] बहिःस्थले ।
उभे स्पृष्ट्वा समाचामेदुभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१७॥

स्थल पर खड़े होकर जल में और जल में खड़े होकर स्थल पर आचमन नहीं करना चाहिए। एक पैर जल में और दूसरा स्थल पर रखकर आचमन करने से वह आचमन शुद्ध माना जाता है ॥ १७ ॥

स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्योपसर्पणे ।
आचान्तः पुनराचामेद् वासो विपरिधाय च ॥१८॥

स्नान, जलपान, भोजन, शयन और मार्ग में भ्रमण तथा वस्त्र धारण के बाद दो बार आचमन करना चाहिए। इसी तरह ॥ १८ ॥

क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाऽनृते ।
पतितानां च सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत् ॥१९॥

छींकने, थूकने, दाँतों में अन्न का कण रहने, मिथ्या भाषण करने और पतितों के साथ वार्तालाप करने के बाद दाहिने कान का स्पर्श करना चाहिए ॥ १९ ॥

भास्करस्य करैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते ।
अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात् ॥२०॥

दिन में किया जानेवाला स्नान उत्तम माना गया है, क्योंकि सूर्य की रश्मियों द्वारा वह जल पवित्र किया गया होता है। ग्रहण के अतिरिक्त रात्रि में स्नान करने का निषेध किया गया है ॥ २० ॥

मरुतो वसवो रुद्रा आदित्याश्चाऽथ देवताः ।
सर्वे सोमे प्रलीयन्ते तस्माद् दानं तु संग्रहे ॥२१॥

मरुत्, वसु, रुद्र, आदित्य और समस्त देवता चन्द्रमा में मिल जाते हैं। इसीलिए ग्रहण के समय सभी देवताओं की रक्षा के निमित्त दान करने का माहात्म्य बतलाया गया है ॥ २१ ॥

---

१. 'श्चेद्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

खलयज्ञे विवाहे च संक्रान्तौ ग्रहणे तथा ।
सर्वर्या दानमस्त्येव नाऽन्यत्रैवं[1] विधीयते ॥२२॥

खलिहान, विवाह, संक्रान्ति और ग्रहण काल में ही दान किया जाना उचित है अन्यथा रात्रिकालीन दान वर्जित है ॥२२॥

पुत्रजन्मनि यज्ञे च तथा चाऽत्ययकर्मणि ।
राहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नाऽन्यदा निशि ॥२३॥

पुत्रोत्पत्ति, यज्ञ, मरण और ग्रहण के समय रात्रि में किया जाने-वाला दान फलदायक कहा है । इसके अतिरिक्त और किसी भी समय रात्रि में दान नहीं करना चाहिए ॥२३॥

महानिशा तु विज्ञेया मध्यस्थं प्रहरद्वयम् ।
प्रदोष-पश्चिमौ यामौ दिनवत् स्नानमाचरेत् ॥२४॥

रात्रि के मध्यकाल में दो पहर का समय महानिशा होती है और सन्ध्या के पहले तथा पिछले प्रहर की रात में दिन के समान ही स्नान किया जा सकता है ॥२४॥

चैत्यवृक्षश्चितिर्यूपश्चाण्डालः[2] सोमविक्रयी ।
एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्ट्वा सवासा जलमाविशेत् ॥२५॥

श्मशान के वृक्ष, श्मशान का खम्भा, चाण्डाल या सोमलता के विक्रेता का यदि कोई ब्राह्मण स्पर्श कर ले तो उसे विवस्त्र (वस्त्र-सहित) होकर जल में स्नान करना चाहिए ॥२५॥

अस्थिसञ्चयनात् पूर्वं रुदित्वा स्नानमाचरेत् ।
अन्तर्दशाहे विप्रस्य ह्यूर्ध्वमाचमनं स्मृतम् ॥२६॥

अस्थिसंचय (मरने के पश्चात् चार दिन) के पूर्व रुदन करनेवाला ब्राह्मण स्नान के द्वारा शुद्ध हो जाता है । और यदि दस दिन के अन्दर रुदन करे तो आचमन से ही शुद्धि मिल जाती है ॥२६॥

---

१. 'तु' इति । २. 'पूयश्चण्डालः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुग्रस्ते दिवाकरे।
सोमग्रस्ते तथैवोक्तं स्नान-दानादि कर्मसु ॥२७॥

सूर्य या चन्द्रग्रहण के समय दानादि के रूप में मिलनेवाला पदार्थ गंगाजल के समान फलदायी होता है ॥२७॥

कुशैः पूतं भवेत् स्नानं कुशेनोपस्पृशेद् द्विजः।
कुशेन चोद्धृतं तोयं सोमपानसमं भवेत् ॥२८॥

कुश के द्वारा किया जानेवाला स्नान पवित्र होता है। ब्राह्मण को कुश लेकर ही आचमन करना चाहिए। कुश के साथ जो जल उठाया जाता है, वह जल सोमपान के सदृश अत्यन्त पुनीत होता है ॥२८॥

अग्निकार्यात् परिभ्रष्टाः सन्ध्योपासनवर्जिताः।
वेदं चैवाऽनधीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥२९॥

अग्निहोत्र से च्युत, सन्ध्या-वन्दन से रहित और वेदपाठ से विमुख होनेवाला ब्राह्मण शूद्र के समान कहा गया है ॥२९॥

तस्माद् वृषलभीतेन ब्राह्मणेन विशेषतः।
अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते ॥३०॥

इसलिए ब्राह्मण को चाहिए कि यदि वेद का सम्पूर्ण भाग न पढ़ सके तो उसके एक भाग का ही पाठ कर ले ॥३०॥

शूद्रान्न-रस-पुष्टस्याऽप्यधीयानस्य[1] नित्यशः।
जपतो जुह्वतो वाऽपि गतिरूर्ध्वा न विद्यते ॥३१॥

शूद्र के अन्न और रस से पलनेवाले वेदाध्ययन, जप और हवन के द्वारा भी सद्गति प्राप्त नहीं कर सकते ॥३१॥

शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम्।
शूद्राज्ज्ञानाऽऽगमश्चैव[2] ज्वलन्तमपि पातयेत् ॥३२॥

अग्नि के समान तेजस्वी ब्राह्मण भी शूद्र का अन्न ग्रहण करते,

१. 'धीयमानस्य' इति। २. '-श्चापि' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

उनके साथ मेल-जोल बढ़ाने, उठने-बैठने और उनके उपदेश को सुनने से पतित हो जाते हैं ।।३२।।

यः शूद्र्या पाचयेन्नित्यं शूद्री च गृहमेधिनी ।
वर्जितः पितृ-देवेभ्यो रौरवं याति स द्विजः ।।३३।।

जिस ब्राह्मण को रसोई शूद्र जाति की स्त्री बनाती है, ब्राह्मण की पत्नी बनकर घर में रहती है तथा जो ब्राह्मण देव-पितृ कार्य से पराङ्मुख है, उस ब्राह्मण को रौरव नरक में वास करना पड़ता है ।।३३।।

मृ[1]त-सूतक-पुष्टाङ्गा द्विज शूद्रान्नभोजनः ।
अहं तन्न विजानामि कां कां योनिं गमिष्यति ? ।।३४।।

सूतक लगने के कारण अशौचप्राप्त व्यक्ति का अन्न खाने तथा शूद्र का भोजन ग्रहण करनेवाले ब्राह्मण को किन-किन योनियों में भ्रमण करना पड़ेगा, इस बात को हम नहीं बतला सकते ।।३४।।

गृध्रो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शूकरः ।
श्वयोनौ सप्त जन्मानि इत्येवं मनुरब्रवीत् ।।३५।।

मनु ने कहा है कि ऐसा ब्राह्मण बारह जन्म तक गीध, दस जन्म तक सूअर और सात जन्म तक कुत्ते की योनि में रहता है ।।३५।।

दक्षिणार्थं तु यो विप्रः शूद्रस्य जुहुयाद् हविः ।
ब्राह्मणस्तु भवेच्छूद्रः शूद्रस्तु ब्राह्मणो भवेत् ।।३६।।

शूद्र के यज्ञ में जो ब्राह्मण शूद्र द्वारा पाचित खीर अग्नि में हवन करता है, तो दक्षिणा-लोलुप ऐसा ब्राह्मण शूद्रत्व को प्राप्त होता है और वह शूद्र ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है ।।३६।।

मौनव्रतं समाश्रित्य आसीनो न वदेद् द्विजः ।
भुञ्जानो हि वदेद् यस्तु तदन्नं परिवर्जयेत् ।।३७।।

१. 'मृतसूतकपुष्टाङ्गं द्विजं शूद्रान्नभोजिनम्' इति द्वितीयान्तपदयुक्तोऽपि पाठः क्वचित्पुस्तके दृश्यते ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

मौन होकर भोजन करनेवाला व्यक्ति यदि असावधानी के कारण कदाचित् बोल दे, तो उसे अवशिष्ट अन्न को त्याग देना चाहिए ॥३७॥

[1]अर्द्धं भुक्ते तु यो विप्रस्तस्मिन् पात्रे जलं पिबेत् ।
हतं दैवं च पित्र्यं च आत्मानं चैवं[2] घातयेत् ॥३८॥

जो ब्राह्मण आधा भोजन करते ही उसी भोजनपात्र में जल पी ले तो वह ब्राह्मण देव-पितृ कार्य के अतिरिक्त अपनी आत्मा का भी हनन कर लेता है ॥३८॥

भुञ्जानेषु तु विप्रेषु योऽग्रे पात्रं विमुञ्चति ।
स मूढः स च पापिष्ठो ब्रह्मघ्नः स खलूच्यते ॥३९॥

ब्राह्मणों के भोजन करते समय जो व्यक्ति सबसे पहले भोजन छोड़कर उठ जाता है वह मूर्ख, पापी और ब्रह्मघाती होता है ॥३९॥

भोजनेषु च तिष्ठत्सु स्वस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः ।
न देवास्तृप्तिमायान्ति निराशाः पितरस्तथा ॥४०॥

भोजन का पत्तल उठने से पहले ही ब्राह्मण लोग यदि स्वस्तिवाचन कर दें तो देवता अतृप्त रह जाते और पितृ-गण निराश हो जाते हैं।४०।

[3]अस्नात्वा नैव भुञ्जीत अजप्त्वाऽग्निमहूय च ।
[4]पर्णपृष्ठे न भुञ्जीत रात्रौ दीपं विना तथा ॥४१॥

स्नान, जप और अग्निहोत्र के बिना भोजन नहीं करना चाहिए। पत्तल को उलटा रखकर भी भोजन न करे और रात्रि को बिना दीपक अर्थात् अँधेरे में भोजन करना उचित नहीं है ॥४१॥

गृहस्थस्तु दयायुक्तो धर्ममेवाऽनुचिन्तयेत् ।
पोष्यवर्गार्थसिद्धयर्थं न्यायवर्ती सु[5]बुद्धिमान् ॥४२॥

---

१. 'अर्द्धभुक्ते' इति । २. 'चोपघातयेत्' इति । ३. 'अस्नात्वा वै न भुञ्जीत तथैवाऽग्निमपूज्य च' इति । ४. 'न पर्णपृष्ठे' इति । ५. 'स बुद्धिमान्' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

दयायुक्त होकर धर्मचिन्तन करने और अपने आश्रितों के भरण-पोषण के लिए नीतिपूर्वक आचरण करनेवाला गृहस्थ ही बुद्धिमान समझा जाता है ॥४२।

न्यायोपार्जितवित्तेन कर्त्तव्यं ह्यात्मरक्षणम् ।
अन्यायेन तु यो जीवेत् सर्वकर्मबहिष्कृतः ॥४३॥

न्यायपूर्वक उपार्जित धन से आत्मरक्षा करना उचित है। इसके विपरीत अन्याय द्वारा अर्जित धन सभी शुभ कर्मों का नाशक होता है ॥४३॥

अग्निश्चित्कपिला सत्री राजा भिक्षुर्महोदधिः ।
दृष्टमात्राः पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः ॥४४॥

अग्निहोत्री, इष्ट का चयनकर्ता, कपिला गौ, यज्ञकर्ता, राजा, संन्यासी और समुद्र के दर्शन मात्र से मनुष्य शुद्धता को प्राप्त होता है। इसलिए उपर्युक्त का दर्शन प्रतिदिन ही करना चाहिए ॥४४॥

अरणिं कृष्णमार्जारं चन्दनं सुमणिं घृतम् ।
तिलान् कृष्णाऽजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत् ॥४५॥

अपने घर में अग्निमन्थन दण्ड, काली बिल्ली, चन्दन, श्रेष्ठ मणि, घी, तिल, काले मृग का चर्म और बकरे को रखना चाहिए ॥४५॥

गवां शतं सैकवृषं यत्र तिष्ठत्ययन्त्रितम् ।
तत्क्षेत्रं दशगुणितं 'गोचर्म' परिकीर्तितम् ॥४६॥

भूमि की जितना दूरी में सौ गायें और एक बैल खड़ा हो उससे दसगुनी विस्तृत भूमि को 'गोचर्म' कहते हैं ॥४६॥

ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो मनो-वाक्काय कर्मजैः[1] ।
एतद् गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥४७॥

इस गोचर्म भूमि का दान करनेवाला व्यक्ति कायिक, वाचिक, मानसिक और ब्रह्महत्यादि पापों से मुक्त हो जाता है ॥४७॥

---

१. 'कर्मभिः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः ।
यद्दानं दीयते तस्मै तद्दानं शुभकारकम् ॥४८॥

कुटुम्बी, दरिद्री और विशेषत: वेदपाठी ब्राह्मण को दिया जानेवाला दान शुभ फलदायक कहा गया है । ४८॥

वापी कूप-तडागाद्यैर्वाजपेय-शतैर्मखैः ।
गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुद्ध्यति ॥४९॥

किसी की भूमि का हरण करनेवाला व्यक्ति सैकड़ों वापी, कूप, तालाब आदि का निर्माण कराने, सैकड़ों वाजपेय यज्ञ करने तथा करोड़ों गायें दान करने पर भी पापरहित होकर शुद्ध नहीं हाता ॥४९॥

अष्टादशदिनादर्वाक् स्नानमेव रजस्वला ।
अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरब्रवीत् ॥५०॥

उशना मुनि का कथन है कि यदि स्त्री अठारह दिन के अन्दर ही रजस्वला हो जाती हो तो वह तीन दिनों तक अशुद्ध रहती है ॥५०॥

युगं युगद्वयं चैव त्रियुगं च चतुर्युगम् ।
चाण्डाल-सूतिकोदक्या-पतितानामधःक्रमात् ॥५१॥

पतिता स्त्री से चार हाथ, रजस्वला से आठ हाथ, प्रसूता से बारह हाथ तथा चाण्डालिनी से सोलह हाथ की दूरी पर रहना चाहिए ।५१।

ततः सन्निधिमात्रेण स-चैलं स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वाऽवलोकयेत् सूर्यमज्ञानात् स्पृशते यदि ॥५२॥

यदि उपर्युक्त रूप से वर्णित दायरे के निकट वे आ जायें तो वस्त्र सहित स्नान कर डालना चाहिए । यदि अज्ञानवश इन्हें स्पर्श कर ले तो स्नान के बाद सूर्य का दर्शन करना चाहिए । ज्ञान द्वारा स्पर्श करने पर आठ हजार गायत्री मन्त्र का जप किया जाता है ॥५२॥

विद्यमानेषु हस्तेषु ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः ।
तोयं पिबति वक्त्रेण श्वयोनौ जायते ध्रुवम् ॥५३॥

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

हाथ का प्रयोग न करके नदी में मुँह लगाकर पानी पीनेवाला अल्पज्ञ ब्राह्मण निश्चय ही कुत्ते की योनि में वास करता है ॥५३॥

यस्तु क्रुद्धः पुमान् ब्रूयाज्जायायास्तु अगम्यताम् ।
पुनरिच्छति चेदेनां विप्रमध्ये तु श्रावयेत् ॥५४॥

जो ब्राह्मण क्रोधावेश में अपनी पत्नी को माता या बहन की संज्ञा दे दे और क्रोध शान्त होने के पश्चात् यदि उससे पुनः रमण करना चाहे तो उस ब्राह्मण को परिषद् में इस बात को घोषणा करनी चाहिए—।५४।

श्रान्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो वा क्षुत्पिपासा-भयार्दितः ।
दानं पुण्यमकृत्वा तु प्रायश्चित्तं दिनत्रयम् ॥५५॥

मैंने श्रान्त, क्रोध, अज्ञान, क्षुधा-तृषा से क्लान्त एवं भयभीत होकर ऐसा वाक्य कह दिया, अथवा दान, तीर्थ, यात्रादि पुण्य करता हूँ, कहकर भी उसे न करे तो भी ब्राह्मणों को यही पूर्वोक्त कारण सुनाना चाहिए और तीन दिन तक उपवास करना चाहिए ॥५५॥

उपस्पृशेत् त्रिषवणं महानद्युपसङ्गमे ।
चीर्णान्ते चैव गां दद्याद् ब्राह्मणान् भोजयेद् दश ॥५६॥

इसके बाद समुद्रगामिनी नदी के संगम में त्रिकाल स्नान करे, तत्पश्चात् एक गोदान देकर और दस ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए ॥५६॥

दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च ।
अन्नं भुक्त्वा द्विजः कुर्याद् दिनमेकमभोजनम् ॥५७॥

दुराचरण और निषिद्धाचरण करनेवाले ब्राह्मण का यदि कोई ब्राह्मण अन्न भक्षण कर ले तो उसे एक दिन तक उपवास करना चाहिए ॥५७॥

सदाचारस्य विप्रस्य तथा वेदान्तवेदिनः ।
भुक्त्वाऽन्नं मुच्यते पापादहोरात्रान्तरान्तरः[1] ॥५८॥

---

१. '-न्नरः' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

यदि स्वयं उपवास न कर सके तो किसी सदाचारी या वेदांगज्ञाता ब्राह्मण का अन्न दो दिनों तक भक्षण करे तो उपर्युक्त पाप से वह छूट जाता है ॥५८॥

ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्टमन्तरिक्षमृतो तथा ।
कृच्छ्रत्रयं प्रकुर्वीत अशौचमरणे तथा ॥५९॥

जो कोई वमनादि करके जूठे मुँह, मल-मूत्र से अशुद्ध होकर या अन्तरिक्ष में मृत हो जाय तो प्रायश्चित्त के लिए कृच्छ्र व्रत करा देने अर्थात् व्रत के बदले में उतनी ही गायें दान करने से शुद्ध होता है। इसी प्रकार का प्रायश्चित्त अशौच में मरनेवाले का भी होता है ॥५९॥

कृच्छ्रे देव्ययुतं चैव प्राणायामशतद्वयम् ।
पुण्यतीर्थेऽनार्द्रशिरःस्नानं द्वादशसंख्यया ॥६०॥

दस हजार गायत्री का जप करने से भी कृच्छ्र व्रत का फल होता है, दो सौ प्राणायाम करने से एक कृच्छ्र व्रत पूरा होता है। किसी तीर्थ स्थान में स्नान करके जब केश सूख जायें तो पुनः स्नान करे। इस प्रकार बारह बार करने से एक कृच्छ्र व्रत पूरा होता है ॥६०॥

द्वियोजने तीर्थयात्रा कृच्छ्रमेकं प्रकल्पितम् ।
गृहस्थः कामतः कुर्याद्रेतसः स्खलनं भुवि ॥६१॥

दो योजन अर्थात् आठ कोस तक किसी तीर्थस्थल की ओर गमन करने से भी एक कृच्छ्र व्रत के समान होता है। जो गृहस्थ अपनी स्वेच्छा से वीर्यपात करे तो ॥६१॥

सहस्रं तु जपेद् देव्याः प्राणायामैस्त्रिभिः सह ।
चतुर्विद्योपपन्नस्तु धवद् विप्रघातके ॥६२॥

उसे एक हजार गायत्री मन्त्र का जाप और तीन प्राणायाम करना चाहिए। चारों वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण ॥६२॥

---

१. 'कृच्छ्रं देवयुतं'। २. '-चार्द्रशिराः'। ३. 'द्वियोजनं'। ४. 'ब्रह्मघातके' इति।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

समुद्रसेतुगमनं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्[1] ।
सेतुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वर्ण्यात् समाचरेत् ॥६३॥

को विप्रघाती के लिए सेतुबन्ध रामेश्वर दर्शन करने का प्रायश्चित्त बतलाना चाहिए। प्रायश्चित्त करनेवाले ब्रह्मघाती को रामेश्वर दर्शन के लिए जाते समय मार्ग में सभी वर्णों के यहाँ भिक्षाटन करना चाहिए ॥६३॥

वर्जयित्वा विकर्मस्थान् छत्रोपानद्-विवर्जितः ।
अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः ॥६४॥

विपरीत आचरण करनेवालों के घर भिक्षाटन न करे और न तो अपने पास छाता, जूता आदि ही रखे। भिक्षा याचनाके समय प्रायश्चित्त-कर्त्ता को कहना चाहिए—'मैं दुराचरण करनेवाला पापी हूँ' ॥६४॥

गृहद्वारेषु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ।
गोकुलेषु वसेच्चैव ग्रामेषु नगरेषु वा ॥६५॥

मैं घर के द्वार पर ब्रह्मघाती बनकर भिक्षा के उद्देश्य से आया हूँ। गायों के समूह के साथ गाँव और नगरों में निवास करे ॥६५॥

तपोवनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु वा[2] ।
एतेषु ख्यापयन्नेनः[3] पुण्यं गत्वा तु सागरम् ॥६६॥

तपोवन, तीर्थ, नदी और जल-प्रपातों में अपने किये हुए दुष्कर्मों का वर्णन करते हुए पवित्र सागर में जाय ॥६६॥

दशयोजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
रामचन्द्रसमादिष्टं नरसञ्चय-सञ्चितम् ॥६७॥

भगवान् रामचन्द्र के कथनानुसार नल द्वारा निर्मित, दस योजन चौड़े और सौ योजन लम्बे ॥६७॥

१. 'समादिशेत्' । २. 'च' इति। ३. '-न्नेव' ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
सेतुं दृष्ट्वा विशुद्धात्मा त्ववगाहेत सागरम् ॥६८॥

उस समुद्र सेतु को देखकर मनुष्य ब्रह्महत्यादि पापों से रहित हो जाता है। सेतुदर्शन से शुद्ध शरीर को प्राप्त करके समुद्र में स्नान करना चाहिए ॥६८॥

यजेत वाऽश्वमेधेन राजा तु पृथिवीपतिः ।
पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थमुपसर्पति ॥६९॥

पृथिवीपति राजा को ब्रह्महत्यादि से मुक्त होने के निमित्त अश्वमेध यज्ञ और निज गृह में वास करना उचित है ॥६९॥

सपुत्रः सह [1]भृत्यैश्च कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ।
गाश्चैवैकशतं दद्याच्चातुर्विद्येषु दक्षिणाम् ॥७०॥

पुत्र, पत्नी, सेवक तथा ब्राह्मणों को भोजन करावे और चारों वेद के ज्ञाता ब्राह्मण को दक्षिणा में एक सौ गायों का दान करे ॥७०॥

ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ।
विन्ध्यादुत्तरतो यस्य [2]निवासः परिकीर्तितः ॥७१॥

ब्राह्मणों की प्रसन्नता से ब्रह्महत्यारा भी शुद्ध हो जाता है। विन्ध्य पर्वतमाला के उत्तरी भाग में रहनेवालों के लिए ही ॥७१॥

पराशरमतं तस्य सेतुबन्धस्य दर्शनम् ।
सवनस्थां स्त्रियं हत्वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥७२॥

पराशरके मतसे सेतुबन्ध दर्शनका विधान है। सोमयाग करनेवाली स्त्री का वध करने से ब्रह्महत्या के समान ही व्रत करना चाहिए ॥७२॥

[3]मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्नदीं गत्वा समुद्रगाम् ।
चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥७३॥

सुरापान करनेवाले ब्राह्मण को भी ब्रह्महत्या का व्रत करना उचित है और समुद्र में मिलनेवाली नदियों में स्नान करने के पश्चात्

१. 'भृत्यश्च' । २. 'संवासः' । ३. 'सुरापश्च' ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चान्द्रायण करने का विधान है। इसके बाद ब्राह्मण भोजन कराकर ॥७३॥

अनुडुत्सहितां गां च दद्याद् विप्रेषु दक्षिणाम् ।
सुरापानं सकृत्कृत्वा अग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥७४॥

ब्राह्मण को दक्षिणास्वरूप एक बैल और गौ का दान करना चाहिए। जो एक बार मदिरापान करे या अग्नि के समान तप्त सुरापान करके मृत्यु को प्राप्त हो जाय ॥७४॥

स पांवयेदथात्मानमिह[1] लोके परत्र च ।
अपहृत्य सुवर्णं तु ब्राह्मणस्य ततः स्वयम् ॥७५॥

तो वह व्यक्ति इस लोक तथा परलोक दोनों में अपनी आत्मा को शुद्ध कर लेता है। ब्राह्मण का स्वर्ण चोरी करनेवाले को स्वयं ही ॥७५॥

गच्छेन्मुसलमादाय राजाभ्याशं[2] वधाय तु ।
हतः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञाऽसौ मुक्त एव च ॥७६॥

अपने वध के लिए हाथ में मूसल धारण कर राजा के पास जाना चाहिए। चोर के द्वारा अपने वध का निवेदन करने पर यदि उसे राजा मार डाले या छोड़ दे तो भी वह अपने किये हुए पापों से मुक्त हो जाता है ॥७६॥

कामतस्तु कृतं यत्स्यान्नाऽन्यथा वधमर्हति ।
आसनाच्छयनाद्यानात् सम्भाषात् सहभोजनात् ॥७७॥

जान-बूझकर ब्राह्मण का स्वर्ण चुरानेवाले का वध करना बिहित है, अन्यथा वह वध के अयोग्य होता है। एक साथ बैठने, सोने, एक ही वाहन पर सवारी करने, बोलने और एक साथ बैठकर भोजन करने से ॥७७॥

संक्रामन्ति[3] हि पापानि तैलबिन्दुरिवाऽम्भसि ।

---

१. 'पावयेदिहात्मानमिह' । २. 'राजानं स्ववधाय' इति । '-न्तीह' इति ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

चान्द्रायणं यावकं च तुलापुरुष एव च ।
गवां चैवाऽनुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ।।७८।।

किसी पापी का पाप निर्दोष व्यक्ति को पानी पर तेल की बूँद पड़ने के समान ही लग जाता है। चान्द्रायण, यावक, तुलापुरुष और गायों के पीछे-पीछे अनुसरण करने से सभी प्रकार के पापों का शमन हो जाता है ।।७८।।

एतत् पाराशरं शास्त्रं श्लोकानां शतपञ्चकम् ।
द्विनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संग्रहः ।।७९।।

यह महर्षि पाराशर रचित पाँच सो बानवे श्लोकों का धर्मशास्त्र संग्रह है ।।७९।।

यथाऽध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा ।
अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गकामिना ।।८०।।

इति देवरिया-मण्डलान्तर्गत -'मझौलीराज्य' निवासि-व्याकरणाचार्य-साहित्यवारिधि-पण्डितश्रीशिवदत्तमिश्रशास्त्रिसम्पादिते पाराशरीये धर्म-शास्त्रे सकलप्रायश्चित्तनिर्णयो नाम द्वादशोऽध्यायः समाप्तः ।।१२।।

जिस प्रकार वेदाध्ययन से पुण्य-लाभ होता है उसी प्रकार इस धर्मशास्त्र के पढ़ने से भी पुण्य प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक स्वर्गाभिलाषी व्यक्ति के लिए इस शास्त्र का पठन-पाठन नियमपूर्वक करना अत्यन्त आवश्यक है ।।८०।।

इस प्रकार 'देवरिया'-मण्डलान्तर्गत 'मझौलीराज्य' (सम्प्रति वाराणसी) निवासि-
पण्डित श्रीसन्तशरणमिश्रात्मज-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्र-शास्त्रिकृत
'शिवदत्ती' भाषाटीका में पाराशरीय धर्मशास्त्र में सकल-
प्रायश्चित्त निर्णय नामक बारहवाँ अध्याव समाप्त ।।१२।।

•

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकानुक्रमणिका

*

१. प्रथमोऽध्याय

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
अकृत्वा वैश्वदेवं तु	१५
अकृत्वा वैश्वदेवं तु	१५
अतिथिं तत्र सम्प्राप्तं	१२
अतिथिर्यस्य भग्नाशो	१२
अथ सन्तुष्टहृदयः	३
अथाऽतो हिमशैलाग्रे	१
अन्ये कृतयुगे धर्मास-	७
अपूर्वः सुव्रती विप्रो	१३
अभिगम्य कृते दानं	८
अभिगम्योत्तमं दानमाहूयैव	८
अव्रती ह्यनधीयाना	१७
अस्मिन् मन्वन्तरे धर्माः	४
अहमद्यैव तत्सर्वं	१०
इष्टो वा यदि वा द्वेष्यो	११
कपिलाक्षीरपानेन	१७
कल्पे कल्पे क्षये सत्या	६
कात्यायनकृताश्चैव	४
काष्ठभार-सहस्रेण	१३
कुशलं सम्यगित्युक्त्वा	३
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा	३
कृते तात्क्षणिकः शापस्-	८
कृते तु मानवा धर्मास्-	७

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
कृते त्वस्थिगताः	९
कृते सम्भाषणादेव	७
क्षत्रियो हि प्रजा रक्षन्	१७
गार्गीया गौतमीयाश्च	४
चतुर्णामपि वर्णानामाचारो	१०
चातुर्वर्ण्यं समाचारं	५
चोरो वा यदि चाण्डालः	१६
जितो धर्मो ह्यधर्मेण	९
तच्छ्रुत्वा ऋषिवाक्यं तु	१
ततस्ते ऋषयः सर्वे	२
तपः परं कृतयुगे	७
तस्मिन्नृषिसभामध्ये	२
त्यजेद् देश कृतयुगे	७
दद्याच्च भिक्षात्रितयं	१४
दूराच्चोपगतं श्रान्तं	११
धर्मं कथय मे तात !	४
धर्मस्य निर्णयं प्राह	५
न कश्चिद् वेदकर्ता च	६
न गृह्णति तु यो विप्रो	१६
न चाऽहं सर्वतत्वज्ञः	२
न पृच्छेद् गोत्रचरणे	१३
न श्रीः कुलक्रमायाता	१७

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
नानापुष्प-लताकीर्णं	२	लाभकर्म तथा रत्नं	१७
नैव ग्रामीणमतिथिं	१२	वक्रीणन् मद्य-मांसानि	१७
पराशरमतं पुण्यं	१०	वैश्वदेवकृतं पापं	१५
पुष्पं पुष्पं विचिनुयान्	१७	वैश्वदेवविहीना ये	१५
ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं	१७	वैश्वदेवे तु सम्प्राप्ते	१४
ब्रूहि धर्मं स्वरूपज्ञ	५	शातातपाच्च हारीताद्	४
मानुषाणा हितं धर्मं	१	शिरो वेष्ट्य तु यो भुङ्क्ते	१६
मृगपक्षि-निनादाढ्यं	२	शुक्लवस्त्रं च यानं च	१६
यतत्रे काञ्चनं दत्त्वा	१६	शूद्रस्य द्विज-शुश्रूषा	१७
यतिश्च ब्रह्मचारी च	१४	श्रद्धया चाऽन्नदानेन	१२
यतिहस्ते जलं दद्याद्	१४	षट्कर्माभिरतो नित्यं	१०
यस्यच्छत्रं हयश्चैव	१४	सन्ध्या स्नानं जपो होमो	११
युगे युगे च ये धर्मास्-	९	सीदन्ति चाऽग्निहोत्राणि	९
युगे युगे तु सामर्थ्यं	९	सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं	१३
लवणं मधु तैलं च	१७	सुक्षेत्रे वापयेद् बीजं	१७

*

२. द्वितीयोऽध्याय

अतः परं गृहस्थस्य	१९	जप्यं देवार्चनं होमं	२०
अदाता कर्षकश्चैव	२२	तं प्रवक्ष्याम्यहं पूर्वं	१९
अयोमुखेन काष्ठेन	२२	तिला रसा न विक्रेया	२१
कर्षकः खलयज्ञेन	२३	दानं दद्याच्च वै तेषां	२२
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं	२०	पञ्चसूना गृहस्थस्य	२२
गृहस्थः प्रत्यहं कुर्यात्	२३	ब्राह्मणश्चेत् कृषिं कुर्यात्	२१
चतुर्गवं नृशंसानां	२१	भवन्त्यल्पायुषस्ते वै	२४

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
विप्राणां त्रिशकं भागं	२३	स चौरः स च पापिष्ठी	२३
वैश्यः शूद्रस्तथा कुर्यात्	२४	स्थिराङ्गं नीरुजं दृप्तं	२०
षड्गवं तु त्रियामाहे	२१	स्वयं कृष्टे तथा क्षेत्रे	२०

३. तृतीयोऽध्यायः

अतः शुद्धिं प्रवक्ष्यामि	२४	त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे	३५
अजा गावो महिष्यश्च	२६	दन्तजातेऽनुजाते च	२८
अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं	३४	देवाङ्गना-सहस्राणि	३३
अनुगम्येच्छया प्रेतं	३४	देशान्तरं गतो विप्रः	२७
अन्तरा तु दशाहस्य	३१	देशान्तरमृतः कश्चित्	२७
असगोत्रमबन्धुं च	३४	द्वाविमौ पुरुषौ लोके	३२
आचतुर्थाद् भवेत् स्रावः	२८	न तेषामशुभं किञ्चित्	३४
आजातदन्ता ये बाला	२८	प्रसवे गृहमेधी तु	३०
आदन्तजन्मनः सद्य	२९	प्राप्नोति सूतकं गोत्रे	२६
उद्यतो निधने दाने	३०	प्रेतीभूतं तु यः शूद्रं	३५
उपासने तु विप्राणा-	२५	ब्रह्मचारी गृहे तेषां	२९
एकपिण्डास्तु दायादाः	२६	ब्राह्मणार्थे विपन्नानां	३२
एकाहाच्छुद्ध्यते विप्रो	२५	भृग्वग्निमरणे चैव	२७
कृष्णाऽष्टमी त्वमावास्या	२८	यत्र यत्र हतः शूरः	३२
क्षत्रियं मृतमज्ञानाद्	३५	यदि गर्भो विपद्येत	२८
क्षत्रियो द्वादशाहेन	२५	यदि पत्न्यां प्रसूतायां	३१
चतुर्थे दशरात्रं स्यात्	२७	यस्तु भग्नेषु सैन्येषु	३२
जन्मकर्म-परिभ्रष्टः	२६	यस्य छेदक्षतं गात्रं	३३
जाते विप्रो दशाहेन	२५	ये यज्ञसङ्घैस्तपसा च	३३
जितेन लभ्यते लक्ष्मी-	३३	ललाटदेशे रुधिरं स्रवच्च	३४
तस्माद् द्विजो मृतं शूद्रं	३६	विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा	३६

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोका।	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
विवाहोत्सव-यज्ञेषु	३१	सम्पर्काज्जायते दोषो	३१
शवं तद्वैश्यमज्ञानाद्	३५	सम्पर्काद् दुष्यते विप्रो	२९
शिल्पिनः कारुका वैद्या	२९	सर्वेषां शावमाशौचं	३०
सैन्यस्तं ब्राह्मणं दृष्ट्वा	३२	सव्रतः सत्रपूतश्च	३०

●

४. चतुर्थोऽध्यायः

अतिमानादतिक्रोधात्	३६	न कार्यमावसथ्येन	४१
अपृष्ट्वा चैव भर्तारं	४०	नष्टे मृते प्रव्रजिते	४३
ऋतुस्नाता तु या नारी	३९	नाऽशौचं नोदकं नाऽग्नि	३७
ओघ-वाताऽऽपहृतं बीजं	४१	पत्यौ जीवति या नारी	४०
औरसः क्षेत्रजश्चैव	४१	परिवित्तिः परिवेत्ता	४२
कुब्ज-वामन-षण्ढेषु	४१	पितृव्यपुत्रः सापत्नः	४३
चतुर्थे दशरात्रं स्यात्	३९	पूय-शोणित-सम्पूर्णो	३६
ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेद्	४३	बान्धवानां सजातीनां	४०
तद्वत् परस्त्रियाः पुत्रौ	४१	मासार्द्ध-मासमेकं वा	३८
तप्तकृच्छ्रेण शुद्धास्ते	३७	मृते भर्तरि या नारी	४३
तप्तकृच्छ्रेण शुद्ध्यन्ती	३७	यत्पापं ब्रह्महत्यायां	४०
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च	४४	यो वै समाचरेद् विप्रः	३८
त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे	३८	व्यालग्राही यथा व्यालं	४४
त्र्यहमुष्णं पिबेद् वारि	३७	शुद्ध्यर्थमष्टमे चैव	३९
दरिद्रं व्याधितं धूर्तं	४०	षट्पलं तु पिबेदम्भस्-	३८
द्वौ कृच्छ्रौ परिवित्तेस्तु	४२	संस्पृशन्ति तु ये विप्रा	३७

●

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

५. पञ्चमोऽध्यायः

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
अग्निहोत्रोपकरणमशेषं	४९	दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो	४७
अन्यथा कुवते कर्म	५०	देहनाशमनुप्राप्तः	४७
अव्रतः सव्रतो वाऽपि	४५	प्राजापत्यं चरेत् पश्चात्	४७
असद्ब्राह्मणके ग्रामे	४६	वृक-श्वान-शृगालाद्यैः	४४
ईदृशं तु विधिं कुर्याद्	४९	वेद-विद्या-व्रतस्नातः	४५
एकविंशतिमूरुभ्यां	४८	शतं तु जघने दद्याद्	४८
कर्णे चोलूखलं दद्यात्	४९	शम्यां शिश्ने विनिःक्षिप्य	४८
कृष्णपक्षे यदा सोमो	४६	शुना घ्राताऽवलीढस्य	४६
कृष्णाजिनं समास्तीर्य	४८	शुना तु ब्राह्मणी दष्टा	४६
गवां शृङ्गोदकैः स्नानं	४५	श्रोत्रे च प्रोक्षणी दद्याद्	४९
चत्वारिंशच्छिरे दद्याद्	४८	सव्रतस्तु शुना दष्टो	४५
चाण्डालेन श्वपाकेन	४७	स्वेनाग्निना स्वमन्त्रेण	४७
दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता	४९		

६. षष्ठोऽध्यायः

अतः परं प्रवक्ष्यामि	५०	कुरङ्गं वानरं सिंहं	५३
अतोऽन्यथा भवेद् दोषः	६३	कुर्याद् वाक्य द्विजानां च	६४
अल्पं परित्यजेदन्न	६८	कुर्वन्त्यनुग्रहं ये तु	६३
अविज्ञातस्तु चाण्डालो	५८	कुसुम्भ-गुड-कार्पास-	५९
उपवासो व्रतं होमो	६२	'केनेदं शुद्धयते ? चे' ति	६६
एकैकं ग्रासमश्नीयाद्	५७	क्रौञ्च-सारस-हंसाश्च	५०
एव चतुष्पदानां च	५३	क्षत्रियेणाऽपि वैश्येन	५४
एवं शुद्धस्ततः पश्चात्	५९	क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य	६१
कारण्डव-चकोराणां	५१	गजस्य च तुरङ्गस्य	५२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोका:	पृष्ठाङ्काः	श्लोका:	पृष्ठाङ्काः
गवां मूत्र-पुरीषेण	६१	भावदुष्टं न भुञ्जीत	५९
गृध्र-श्येन-शशादोना-	५१	भुङ्क्तेऽज्ञानाद् द्विजश्रेष्ठः	५७
गृहस्याभ्यन्तरं गच्छेत्	६१	भेरुण्ड-चाष-भासांश्च	५२
चरेत् सान्तपनं विप्रः	५६	महत्कार्योपरोधेन	६३
चाण्डालं हतवान् कश्चिद्	५४	मुनिवक्त्रोद्गतान् धर्मान्	५८
चाण्डालं खात-वापीषु	५५	मृग-रोहिद्-वराहाणा-	५३
चाण्डालंघटसंस्थं तु	५६	यथा पराशरेणोक्तं	६६
चाण्डालदर्शने सद्यः	५५	यदि न क्षिपते तोयं	५६
चाण्डालभाण्डसंस्पृष्ट	५६	रजकी कर्मकारी च	६०
चाण्डालैः सह सम्पर्कं	६०	रसपूर्णं तु मृद्भाण्डं	६१
चाण्डालैः सह सुप्ते तु	५५	वल्गुली-टिट्टिभानां च	५१
चौराः श्वपाक-चाण्डाला	५४	विप्रसम्पादितं यस्य	६५
ज्ञात्वा तु निष्कृतिं कुर्यात्	६०	विप्राणां वेदघोषेण	६७
ततो द्रोणाऽऽढकस्यानं	६६	वृक-काक-कपोतानां	५१
तदन्तरा स्पृशेच्चापः	६५	वृक-जम्बुक-ऋक्षाणां	५२
ते तस्य विघ्नकर्तारः	६३	वृथा तस्योपवासः स्यान्न	६४
तेषां वाक्योदकेनैव	६४	वेद-वेदाङ्गविद्-विप्रै-	६६
त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च	५८	वैश्यं वा क्षत्रियं वाऽपि	५४
दध्ना च सर्पिषा चैव	५८	वैश्यं शूद्रं क्रियाऽऽसक्तं	५४
पुनर्लेपन-खातेन	६०	शिल्पिन कारुकं शूद्रं	५३
प्रणम्य शिरसा ग्राह्य-	६२	शिशुमारं तथा गोधां	५२
वलाका-टिट्टीभौ वाऽपि	५१	शूद्राणां नोपवासः स्यात्	६२
ब्रह्मकूर्चोपवासेन	५७	श्वपाकं वाऽपि चाण्डालं	५५
ब्राह्मणस्य व्रणद्वारे	६१	श्वान-चाण्डालदृष्टो च	६५
भस्मना तु भवेच्छुद्धि-	५९	सर्वं भवति निश्छिद्रं	६३
भाण्डस्थमन्त्यजानां तु	५६		

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
सर्वदेवमयो विप्रः	६४	स्वमुच्छिष्टमसौ भुङ्क्ते	६५
सर्वान् कामानवाप्नोति	६३	स्वल्पमन्नं त्यजेद् विप्रः	६७
सुवर्णोदकमभ्युक्ष्य	६७	हत्वा मूषक-मार्जार-	५२

७. सप्तमोऽध्यायः

अथाऽतो द्रव्यसंशुद्धिः	६८	मधुपर्के च सोमे च	७६
अनुच्छिष्टेन शूद्रेण	७३	माता चैव पिता चैव	७०
अष्टवर्षा भवेद् गौरी	६९	मारुतार्केण शुद्धयन्ति	७६
अस्तङ्गते यदा सूर्ये	७१	मार्जनाद् यज्ञपात्राणां	६८
आतुरे स्नान उत्पन्ने	७३	मृण्मये दहनाच्छुद्धि-	७५
आयसेष्वायसानां च	७४	मेध्याऽमेध्य स्पृशन्तोऽपि	७६
उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टः	७३	यः करोत्येकरात्रेण	७०
उद्धरेद् दीनमात्मानं	७८	यस्तां समुद्वहेत् कन्यां	७०
एते सर्वेऽपि विप्राणां	७७	रक्षेदेव स्वदेहादि	७७
और्ण-नेत्रपटानां च	७५	रजसा शुद्धयते नारी	६९
गण्डूषं पादशौचं च	७४	रोगेण यद्रजः स्त्रीणा-	७२
गावाघ्रातानि कांस्यानि	७४	वापी-कूप-तडागेषु	६९
चरूणां च स्रुवाणां च	६९	विप्रस्य दक्षिणे कर्णे	७७
जातवेदं सुवर्णं च	७१	शोषयित्वाऽर्कतापेन	७५
तृणकाष्ठस्य रज्जूणा-	७५	साध्वाचारा न तावत् स्याद्	७२
पतितानां च सम्भाषे	७७	स्त्रियो वृद्धस्तथा बालाः	७७
प्रथमेऽहनि चाण्डाली	७३	स्नाता रजस्वला या तु	७२
प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे	७०	स्पृष्ट्वा रजस्वला	७१
भस्मना शुद्धयते कांस्यं	७४	स्पृष्ट्वा रजस्वला	७१
भुक्तोच्छिष्ट तथा स्नेहं	७६	स्पृष्ट्वा रजस्वलाऽन्योन्यं	७१
मणिपात्राणि शङ्खश्चेत्	७४	स्पृष्ट्वा रजस्वला	७२

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

८. अष्टमोऽध्यायः

श्लोकाः	पृष्ठांकाः	श्लोकाः	पृष्ठांकाः
अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि	८१	नैव गच्छति कर्तारं	८२
अत ऊर्ध्वं तु ये विप्राः	८३	पञ्चपूर्वं मया प्रोक्ताः	८३
अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि	७९	पिबतीषु पिबेत्तोयं	८७
अनाहिताग्नयो येऽन्ये	८२	प्रमाणमार्गं मार्गन्तो	८१
अमेध्यानि तु सर्वाणि	८५	प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्	८६
अव्रतानाममन्त्राणा-	८१	प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति	८४
आत्मनो यदि वाऽन्येषां	८७	प्रायश्चित्ते समुत्पन्ने	८०
उपस्थाय ततः शीघ्र-	८०	प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे	८९
उष्णे वर्षति शीते वा	८७	ब्राह्मणांस्ताननतिक्रम्य	८६
एकाहमेकभक्ताशी	८८	ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु	८९
कृत्वा पापं न गूहेत	७९	ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा	८७
गवां बन्धनयोक्त्रेषु	७८	मुनीनामात्मविद्यानां	८३
गायत्रीरहितो विप्रः	८५	यथा काष्ठमयी हस्ती	८३
गोवधस्याऽऽनुरूपेण	८८	यथाऽश्मनि स्थितं तोयं	८२
ग्रामस्थानं यथा शून्यं	८३	यथा षण्ढोऽफलः स्त्रीषु	८४
चतुरहं त्वेकभक्ताशी	८८	यद् वदन्ति तमोमूढा	८१
चत्वारो वा त्रयो वाऽपि	८१	ये पठन्ति द्विजा वेदं	८४
चत्वारो वा त्रयो वाऽपि	८२	राज्ञश्चाऽनुमते स्थित्वा	८६
चातुर्वैद्योऽविकल्पी च	८५	वेद-वेदाङ्गविदुषा	७८
चित्रकर्म यथाऽनेकै-	८४	संशये तु न भोक्तव्यं	७९
ते हि पापे कृते वैद्या	८०	सचैलं वाग्यतः स्नात्वा	८०
त्रिदिनं चैकभक्ताशी	८८	सद्यो निःसंशये पापे	७९
दिनद्वयं चैकभक्तो	८८	सम्प्रणीतः श्मशानेषु	८४
दुःशीलोऽपि द्विजः पूज्यो	८५	स-शिखं वपनं कृत्वा	८६
धर्मशास्त्ररथाऽऽरूढा	८५	सावित्र्याश्चाऽपि गायत्र्याः	८०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

९. नवमोऽध्यायः

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
अकृत्वा वपनं तेषां	१००	त्रिसन्ध्यं स्नानमित्युक्तं	१०१
अङ्गुष्ठमात्रस्थूलस्तु	९१	दण्डादूर्ध्वं यदन्येन	९०
अतिदाहेऽतिवाहे च	९५	दहनात्तु विपद्येत	९५
अतिदाहे चरेत् पादं	९५	द्विगुणे व्रत आदिष्टे	१००
अन्यत्राङ्कन-लक्ष्मभ्यां	९५	नदीषु सङ्गमे चैव	१०१
आराधितस्तु यः कश्चिद्	९७	नदीष्वथ समुद्रेषु	९०
एका चेद् बहुभिः काचिद्	९९	न नारिकेलैर्न च शाणबालैः	९६
एको हतो यैर्बहुभिः समेतै-	९९	न स्त्रियाः केशवपनं	१०१
कामाऽकामकृतक्रोधी	९१	निशि बन्धनिरुद्धेषु	९८
काष्ठ-लोष्टक-पाषाणैः	९४	निष्पन्नसर्वगात्रैस्तु	९२
कुशैः काशैश्च बध्नीयाद्	९६	पञ्च सान्तपने गावः	९४
कूपखाते तटाबन्धे	९७	पादेऽङ्गरोमवपनं	९२
कूपखाते तथा खाते	९७	पादे वस्त्रयुगं चैव	९२
कूपादुत्क्रमणे चैव	९७	पाषाणेनाथ दण्डेन	९३
क्लीबा दुःखी च कुष्ठी च	१०२	पिण्डस्थे पादमेकं तु	९२
गवां संरक्षणार्थाय	८९	प्रमापणे प्राणभृतां	९४
गृहेषु सततं तिष्ठेत्	१०१	प्रायश्चित्तं तु तेनोक्त	१००
गोपतिर्मृत्युमाप्नोति	९१	प्रेरयन् कूप वापीषु	९७
गो-वृषाणां विपत्ती च	९९	बन्ध-पाश-सुगुप्ताङ्गो	९६
ग्रामघाते शरौघेण	९८	मूर्च्छितः पतितो वाऽपि	९१
ग्रासं वा यदि गृह्णीयात्	९२	यदि तत्र भवेत् काष्ठं	९६
ग्रासार्थं चोदितो वाऽपि	१००	यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो	९४
चरेत् सान्तपन काष्ठे	९४	यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं	९८
तत्पापं तस्य तिष्ठेत्	१०१	यावत्सम्पूर्ण-सर्वाङ्ग-	९३
तदेव बन्धनं विद्यात्	९१	योक्त्र-दामक-दौरैश्च	९०

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोका:	पृष्ठाङ्का:	श्लोक:	पृष्ठाङ्का:
योक्त्रेषु तु त्रिपादं स्यात्	९०	शृङ्गभङ्गेऽस्थि-भङ्गे च	९३
रोधनं बन्धनं चैव	९५	संग्रामे प्रहतानां च	९८
रोध-बन्धन-योक्त्राणि	९०	स न्याति नरकं घोरं	१०२
लाङ्गूले पादकृच्छ्रं तु	९३	सर्वान् केशान् समुद्धृत्य	१०१
वेश्मद्वारे निवासेषु	९८	स्त्री-बाल भृत्य-गो-विप्रेषु	१०२
व्यापन्नानां बहूनां च	९९	हते तु रुधिरं दृश्यं	१००
व्रण भङ्गे च कर्तव्यः	९३		

१०. दशमोऽध्यायः

इतरेषामहोरात्रं	१११	जप-होम-दया-दानैः	१११
उल्लिख्य तद्गृहं पश्चात्	११०	जारेण जनयेद् गर्भं	१०९
एकैकं ह्रासयेद् ग्रासं	१०३	तत्र स्थित्वा निराहारा	१०६
एतास्तु मोहितो गत्वा	१०५	त्रिरात्रमुपवासित्वा	१०६
कामान्मोहात्तु या गच्छेत्	१०९	दशगोमिथुनं दद्याच्छुद्धि	१०५
कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु	१०३	दशमे तु दिने प्राप्ते	१०९
कृत्वा सान्तपनं कृच्छ्रं	१०८	न प्रदुष्यन्ति दर्भाश्च	१११
खरी च सूकरीं गत्वा	१०५	पतितार्द्धंशरीरस्य	१०८
गायत्रीं च जपेन्नित्यं	१०४	पुंसो यदि गृहे गच्छेत्	११०
गुरुपत्नीं स्नुषां चैव	१०५	प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं	१०४
गोद्वयं दक्षिणां दत्वा	१०५	प्राजापत्यद्वयं कुर्याद्	१०४
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्	१०४	प्राजापत्येन शुद्ध्येत	१०८
गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्	१०७	प्रायश्चित्तं चरेद् विप्रो	१११
गोमूत्रं गोमयं क्षीरं	१०८	प्रायश्चित्तो ततश्चीर्णे	१०३
चाण्डालीं वा श्वपाकीं वा	१०३	बन्दिग्राहे भयार्तो वा	१०६
चातुर्वर्ण्येषु सर्वेषु	१०२	ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्	१०९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः	श्लोकाः	पृष्ठाङ्काः
ब्राह्मणी तु यदा गच्छेत्	११०	विप्रान् दश परान् कृत्वा	१०६
भर्ता चैव चरेत् कृच्छ्रं	११०	व्रतं चरति तद्यावत्	१०७
मंद-मोहगता नारो	१०९	सम्भारांश्छोधयेत् सर्वान्	११०
महिष्युष्ट्री-खरीगामी	१०६	स शिखं वपनं कृत्वा	१०३
मातृष्वसृगमे चैव	१०५	सुवर्णं पञ्चगव्यं च	१०७
यथा भूमिस्तथा नारी	१०८		

११. एकादशोऽध्यायः

अज्ञानाद् भुञ्जते विप्राः	११५	क्षीरं सप्तपलं दद्याद्	११८
अतिकृच्छ्रं च रुधिरे	१२३	गायत्र्यष्टसहस्रेण	११५
अपचस्य च भुक्त्वाऽन्नं	१२२	गायत्र्याऽऽदाय गोमूत्रं	११९
अमेध्य-रेतो गोमांसं	११२	गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः	११८
आपत्कालेषु विप्रेण	११६	गोमूत्रं गोमयं क्षीरं	११८
आपो हिष्ठेति चाऽऽलोड्य	११९	घृत तैलं तथा क्षीरं	११४
उद्धृत्य प्रणवेनैव	१२०	तथैव क्षत्रियो वैश्यो	११२
उष्ट्रीक्षीरमविक्षीर-	११४	तेजोऽसि शुक्रमित्याज्यं	११९
ऋषिभिर्धर्मतत्त्वज्ञ	१२३	तेषां निन्दा न कर्तव्या	१२३
एकपङ्क्त्युपविष्टानां	११३	त्रिरात्रमुपवासी स्याद्	१२४
एकाहेन तु वैश्यस्तु	१२२	दशसाहस्रमभ्यस्ता	१२४
एताभिश्चैव होतव्यं	१२०	दाता प्रतिग्रहीता च	१२२
एवैरुद्धृत्य होतव्यं	१२०	दास-नापित-गोपाल-	११६
कपिलायाः घृतं ग्राह्यं	११८	द्विज-शुश्रूषणस्तान्	११५
कूपे च पतितं दृष्ट्वा	१२१	नारं तु कुणपं काकं	१२१
क्षत्रियाच्छूद्रकन्यायां	११७	पञ्चगव्यं पिबेच्छूद्रो	११२
क्षत्रियाश्चाऽपि वैश्यश्च	११४	परपाकनिवृत्तोऽसौ	१२२
क्षत्रियोऽप्यभोज्यं भुक्त्वा	११३	पिबतः पतितं तोयं	१२१

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठांकाः	श्लोकाः	पृष्ठांकाः
पीयूष श्वेत-लशुनं	११४	वरुणश्चैव गोमूत्रे	१२१
प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः	१२२	विवादेनापि निर्जित्य	१२३
बालै-र्नकुल-मार्जारै-	११३	वैयाघ्रमार्क्षं सैंहं वा	१२१
ब्रह्मकूर्चो दहेत् सर्वं	१२०	वैश्यकन्यासमुद्भूतो	११७
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः	११७	शुष्कान्नं गोरसं स्नेहं	११६
ब्राह्मणस्य यदा भुङ्क्ते	११५	शूद्रकन्यासमुत्पन्नो	११७
भाण्डस्थितमभोज्येषु	११७	शूद्राणां नोपवासः स्यात्	११८
मण्डूकं भक्षयित्वा तु	११४	शूद्रान्नं सूतकान्नं च	११२
मद्य-मांसरतं नित्यं	११५	सततं गृहस्थधर्मो यो	१२३
मोहाद् भुञ्जी यस्तत्र	११३	स्नात्वा तिष्ठन्नहः शेष-	१२३
यदि भुक्तं तु विप्रेण	११३		

१२. द्वादशोऽध्यायः

अग्निकार्यात् परिभ्रष्टाः	१३०	एतत् पाराशरं शास्त्रं	१४०
अग्निचित्कपिला सत्री	१३३	कामतस्तु कृतं यत्स्यात्	१३९
अजिनं मेखला दण्डो	१२५	कुटुम्बिने दरिद्राय	१३४
अज्ञानात् प्राश्य विण्मूत्रं	१२५	कुशैः पूतं भवेत् स्नानं	१३०
अनडुत्संहितां गां च	१३९	कृच्छ्रं देव्ययुतं चैव	१३६
अरणिं कृष्णमार्जारं	१३३	क्षुते निष्ठीवने चैव	१२८
अर्द्धे भुक्ते तु यो विप्रः	१३२	खलयज्ञे विवाहे च	१२९
अवधूनोति च यः केशान्	१२७	गवां चैवाऽनुगमनं	१४०
अष्टादशदिनादर्वाक्	१३४	गवां शतं सैकवृष	१३३
अस्थिसञ्चयनात् पूर्वं	१२९	गृध्रो द्वादश जन्मानि	१३१
अस्नात्वा नैव भुञ्जीत	१३२	गृहद्वारेषु तिष्ठामि	१३७
आग्नेय भस्मना स्नान-	१२६	गृहस्थस्तु दयायुक्तो	१३२
उपस्पृशेत् त्रिषवणं	१३५	गोद्वयं दक्षिणां दद्यात्	१२६
ऊर्ध्वोच्छिष्टमधोच्छिष्ट-	१३६	चैत्यवृक्षश्चितियूंप-	१२९

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

श्लोकाः	पृष्ठांकाः	श्लोकाः	पृष्ठांकाः
जलाऽग्निपतने चैव	१२५	यजेत वाऽश्वमेधेन	१३८
जले स्थलस्थो नाऽऽचा-	१२८	यत्तु सातपवर्षेण	१२६
ततः सन्निधिमात्रेण	१३४	यथाऽध्ययनकर्माणि	१४०
तपोवनेषु तीर्थेषु	१३७	यस्तु क्रुद्धः पुमान् ब्रूयात्	१३५
तस्माद् वृषलभीतेन	१३०	युगं युगद्वयं चैव	१३४
दक्षिणार्थं तु यो विप्रः	१३१	रोमकूपेष्ववस्थाप्य	१२७
दशयोजनविस्तीर्णं	१३८	वर्जयित्वा विकर्मस्थान्	१३७
दुःस्वप्नं यदि पश्येद्	१२४	विण्मूत्रभोजी शुद्ध्यर्थं	१२५
दुराचारस्य विप्रस्य	१३५	विद्यमानेषु हस्तेषु	१३५
द्वियोजने तीर्थयात्रा	१३६	विन्ध्यादुत्तरतो यस्य	१३८
निराशास्ते निवर्त्तन्ते	१२७	वापी-कूप-तडागाद्यै-	१३४
न्यायोपार्जितवित्तेन	१३३	शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा	१२७
पराशरमतं तस्य	१३८	शूद्रान्नं शूद्रसम्पर्कः	१३०
पुत्रजन्मनि यज्ञे च	१२९	शूद्रान्न-रस-पुष्टस्या	१३०
प्राजापत्यद्वयेनैव	१२५	श्रान्तः क्रुद्धस्तमोऽन्धो	१३५
ब्रह्महत्यादिभिर्मर्त्यो	१३३	संक्रामन्ति हि पापानि	१३९
ब्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि	१२५	सदाचारस्य विप्रस्य	१३६
ब्राह्मणानां प्रसादेन	१३८	स पावयेदथात्मान-	१३०
भास्करस्य करैः पूतं	१२८	सपुत्रः सह भृत्यैश्च	१३८
भुञ्जानेषु तु विप्रेषु	१३२	समुद्रसेतुगमनं	१३७
भोजनेषु च तिष्ठत्सु	१३२	सर्वं गङ्गासमं तोयं	१३०
मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्	१३८	सहस्रं तु जपेद् देव्याः	१३७
मरुतो वसवो रुद्रा	१२८	सेतुं दृष्ट्वा समुद्रस्य	१३८
महानिशा तु विज्ञेया	१२९	स्नातुं यान्तं द्विजं सर्वे	१२६
मृत-सूतक-पुष्टाङ्गा	१३१	स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते	१२८
मौनव्रतं समाश्रित्य	१३१	स्नानानि पञ्च पुण्यानि	१२६
यः शूद्रया पाचयेन्नित्यं	१३१	इति श्लोकानुक्रमणिका समाप्ता ● ●	

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

काशी के ख्याति-प्राप्त विद्वान् आचार्य पण्डित श्री शिवदत्तमिश्र-शास्त्रिकृत, संशोधित-सम्पादित, अनुवादित, शुद्धातिशुद्ध, समस्त विद्वानों एवं सम्मानित धर्माचार्यों-द्वारा मुक्तकण्ठ से प्रशंसित, सर्वश्रेष्ठ, **महत्त्वपूर्ण कृतियाँ**

१.	बृहत्स्तोत्ररत्नाकर [स्तोत्र सं० ४४२]—	१८.००
२.	गायत्री-रहस्य अथवा गायत्री पञ्चाङ्ग— 'शिवदत्ती' भा. टी.	१४.००
३.	पाराशरस्मृति—'शिवदत्ती' भाषा टीका	८.००
४.	वाञ्छाकल्पलता—'जयन्ती' भाषा टीका	६ ००
५.	बगलोपासनपद्धति अर्थात् बगलापञ्चाङ्ग–'शिवदत्ती' भा.टी.	१०.००
६.	अन्नपूर्णाव्रतकथा—'सावित्री' भाषा टीका	२ ००
७.	संकटास्तुति—'सङ्कटाप्रिया' हिन्दी टीका सहित	२.००
८.	सूक्त संग्रह-कनकधारास्तोत्र-गणेशाथर्वशीर्ष-देव्यपराधक्षमापनसहित	२.००
९.	दुर्गाकवच—'पुष्पा'भिध' भाषाटीका	१.५०
१०.	गङ्गालहरी—'शिवदत्ती' भाषाटीका	१ ००
११.	प्रत्यङ्गिरास्तोत्र—'शिवदत्ती' भाषाटीका	१.२०
१२.	विपरीत प्रत्यङ्गिरास्तोत्र– 'शिवदत्ती' भाषाटीका	१.२०
१३.	लक्ष्मीनारायणहृदय—लक्ष्मीलहरी सहित : भाषाटीका	१.००
१४.	ऋणमोचन मंगलस्तोत्र—'शिवदत्ती' भाषाटीका	१.५०
१५.	संकटाव्रतकथा—राष्ट्रभाषा हिन्दी में - स्तुतिसहित	१.००
१६.	अन्नपूर्णास्तोत्र—कवचसहित	०.३०
१७.	नारायणकवच—'द्रौपदी' भाषाटीका	०.६०
१८.	लांगूलास्त्र शत्रुञ्जय-हनुमत्स्तोत्र—'शिवत्त' भाषाटीका	०.८०
१९.	पुरुषसूक्तं श्रीसूक्तं च—लक्ष्मीसूक्त सहित	०.३०
२०.	शनिस्तोत्र – 'शिवदत्ती' भाषाटीका	०.८०
२१.	आदित्यहृदयस्तोत्र—नवग्रहस्तोत्र सहित	०.३०

पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर

राजादरवाजा, वाराणसी-१

मुद्रक—स्वतन्त्र भारत प्रेस, हड़हा, वाराणसी

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri

ई1453

आचार्य-पण्डित-श्रीशिवदत्तमिश्र-शास्त्री रचित पुस्तकें ।

दुर्गार्चन पद्धतिः		बृहत्स्तोत्र-रत्नाकरः	१८)
भाषा टीका	२४)	हनुमद्-रहस्यम्	
गायत्री-रहस्यम् "	१४)	भाषा टीका	१४)
बगलामुखी-रहस्य "	८)	राम-रहस्यम् "	१०)
पाराशर-स्मृतिः "	८)	वांछाकल्पलता "	६)
अन्नपूर्णा व्रत-कथा "	२)	सङ्कटा-स्तुति "	१)५०
अनन्त व्रत कथा "	३)	प्रत्यङ्गिरास्तोत्रम् "	१)२०
विष्णु सहस्रनामावली	२)५०	नवग्रह स्तोत्रावली	)६०
शिव सहस्रनामावली	२)५०	देवीसहस्रनामावली	२)५०
प्रदोष-व्रत-कथा		सूक्तसंग्रह	२)००
भाषा	१)५०	दुर्गाकवच भाषा टीका	१)५०
हरितालिका व्रत		लक्ष्मीनारायणहृदयम्	१)५०
कथा भाषा	१)	विवाह पद्धति भाषा टीका	५)
विष्णुसहस्रनाम		ऋणमोचन मङ्गल स्तोत्रम्	
भाषा टीका	६)	भाषा टीका	१ ५०
गोपाल सहस्रनामावली	२)५०	दुर्गापाठ मूल बड़ा	८)

हर प्रकार की पुस्तक मिलने का पता—

ठाकुरप्रसाद एण्ड सन्स बुकसेलर,

गजादरवाजा, वाराणसी ।

मुद्रक- स्वतन्त्रभारत प्रेस, वाराणसी ।

Prof. Madhav Prasad Lamichhane Collection, Kathmandu, Nepal